नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचारपत्र • वर्ष 6 अंक 2
मार्च 2004 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

आम चुनाव की तारीखें घोषित, चुनावी महारथियों की हुंकारें चालू

संसदीय बैठकखाने की बदबू सड़कों-चौराहों की ओर

लखनऊ। लोकसभा चुनाव की तारीखें घोषित होने के साथ ही चुनावी महारथियों की हुंकारें शुरू हो गयी हैं। एक-दूसरे को चुनावी जंग में धूल चटाने के ऐलान के साथ ही चुनावी हम्माम में एक-दूसरे को नंगा करने की होड़ भी मची हुई है। संसद के बैठकखाने की बदबू अब सड़कों-चौराहों तक फैलने लगी है। एक ओर 'आया राम गया राम' की कहानी के एक से बढ़कर एक फूहड़ संस्करण रचे जा रहे हैं तो दूसरी ओर सिनेमाई भाँड़-भड़ुक्कों को भाड़े पर प्रचार करने के लिये पटाने की होड़ भी मची हुई है। इस बार लोकतंत्र की इस महानौटंकी में पूँजीवादी राजनीति के पतन का जो नजारा दिख रहा है उसने पहले के सभी चुनावों को मीलों पीछे छोड़ दिया है।

भाजपाई सदाचार की धोती चियड़ा-चियड़ा

इस बार भाजपा चुनाव जीतने के लिये हरमुमकिन गन्दे हथकण्डे आजमा रही है। इसने न केवल नैतिकता, शुचिता और सदाचार के उसके दावे की धज्जी उड़ा दी है वरन आज की तारीख में यह कांग्रेस सहित दूसरी सभी पार्टियों से आगे निकल चुकी है। सम्भल के निर्दलीय सांसद बाहुबली (बुर्जुआ अखबार माफिया नेताओं के लिये यही संज्ञा देना पसन्द करते हैं) डीपी यादव को पार्टी में शामिल करना, फिर छीछालेदर होने पर निकाल देना भाजपा की राजनीतिक संस्कृति के पतन की एक चमकदार बानगी है।

बानगियाँ और भी हैं। भ्रष्टाचार और बेहयाई के मामले में सिरमौर बन चुकीं तमिलनाडु की मुख्यमंत्री जयललिता के साथ भी भाजपा का चुनावी गंठजोड़ है। संजय गाँधी की चाण्डाल चौकड़ी के एक नगीने और आपातकाल के दागी विद्याचरण शुक्ल छत्तीसगढ़ में भाजपा का दामन थाम चुके हैं। आपातकाल की गलतियों के लिये महज माफी माँग लेने से विद्याचरण शुक्ल के लिये भाजपा ने अपने दरवाजे खोल दिये। जब जयललिता और विद्याचरण शुक्ल जैसे लोग भाजपा के लिये अछूत नहीं रहे तो फिर जूदेव और बंगारू लक्ष्मण क्यों पीछे रहें? खबर है कि इन लोगों ने भी पार्टी आलाकमान से अपनी उम्मीदवारी का दावा पेश कर दिया है। हो सकता है कि चुनाव जिताऊ उम्मीदवारों की तलाश में पसीना-पसीना हो रहा भाजपा आलाकमान इनकी दावेदारी खारिज कर दे, लेकिन इसका कोई नैतिक आधार उसके पास नहीं बचा है।

भाजपा का 'नया अवतार' एक छलावा

भाजपा द्वारा इस चुनाव में

सम्पादक

राममन्दिर को प्रमुख चुनावी मुद्दा न बनाने से एक बार फिर पूँजीवादी अखबारों के कई कलमघसीट झाँसे में आ गये हैं। एक बार फिर वे लिख रहे हैं कि भाजपा एक धर्मनिरपेक्ष पार्टी के रूप में नया अवतार ले रही है। इसके सबूत भी दिये जा रहे हैं। जैसे कि आडवाणी की रथयात्रा (भारत उदय यात्रा) में वाजपेयी सरकार की उपलब्धियों और विकास के कारनामों को ही उजागर किया जा रहा है। आडवाणी जैसे कट्टरपंथी नेता तक राममन्दिर की चर्चा तक नहीं कर रहे हैं। ये सारे सबूत अगर कुछ साबित करते हैं, तो सिर्फ यह कि भाजपा चुनावी राजनीति में इतनी माहिर हो चुकी है कि चुनाव जीतने के लिये वह कोई भी चोला धारण कर सकती है। राममन्दिर मुद्दे का सुर नरम करने के पीछे उसकी चुनावी गणित काम कर रही है। भाजपा की चुनावी रणनीति के धुरन्धर यह अच्छी तरह जानते हैं कि जो वोटर राम मन्दिर के नाम पर वोट देते हैं वे कहीं बहकने वाले नहीं। ऐसे में क्यों न उदारवादी हिन्दू वोटरों या हवा का रुख देखकर वोट डालने वाले वोटरों (खासकर शहरी मध्यवर्गीय वोटरों) को रिझाने के लिये करतब दिखाये जायें। 'भारत उदय' या 'इण्डिया शाइनिंग' के विज्ञापनों में जनता की करोड़ों की सम्पत्ति फूंककर या आडवाणी की भारत उदय यात्रा के जरिये भी भाजपायी रणनीतिकार यही खेल खेल रहे हैं। भाजपा का यह नरम हिन्दुत्व उसके गरम हिन्दुत्व की सेवा ही करता है।

राममन्दिर के नाम पर भाजपा को वोट देने वाले वोटर भी वाजपेयी-आडवाणी की आँख से ओझल नहीं हैं। चुनाव की तारीखों की घोषणा होने के साथ ही वाजपेयी का यह बयान अनायास नहीं था कि राममन्दिर के लिये पाँच साल का समय और दीजिये। आडवाणी भी अपनी रथयात्रा में बड़ी धूर्तता के साथ विकास की खिचड़ी में हिन्दुत्व का तड़का लगा रहे हैं। भाजपा के दूसरे बड़े नेताओं के 'कभी हाँ कभी ना' वाले बयान भी इसी नरम-गरम के खेल का हिस्सा हैं। कोई कह रहा है राममन्दिर मुद्दा है, कोई कह रहा है नहीं। पूँजीवादी अखबारों के कलमघसीटों को अगर भाजपा की यह चुनावी पैंतरेबाजी नया अवतार दीख रही है, तो यही कहा जा सकता है कि या तो वे बेहद भोले हैं या बेहद धूर्त या भोलेपन के आवरण में छिपे धूर्त।

ऐसा नहीं कि राजनीतिक अवसरवादिता भाजपाई चरित्र की नयी विशेषता है। दीनदयाल उपाध्याय के 'एकात्म मानववाद' से लेकर 'गाँधीवादी समाजवाद' और हिन्दू राष्ट्रवाद से लेकर 'स्वेदशी' तक की कलाबाजियों को हमें भूलना नहीं चाहिये। ये सारे वाद भाजपा की चुनावी सुविधा के वाद हैं। उसका असली रंग हिन्दुत्ववादी भगवा ही है और साम्प्रदायिक फासीवाद ही उसका विचारधारात्मक आधार है। यह जरूर है कि अपने असली एजेण्डे को लागू करने में वह बड़ी होशियारी से काम ले रही है। अगर किसी को भाजपाई एजेण्डे के खिसकने के बारे में अब भी कोई भ्रम हो तो वह भाजपा द्वारा जारी दृष्टिपत्र पर एक नजर दौड़ा ले जिसे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के एक आला कार्यकर्ता की मौजूदगी में वाजपेयी के घर पर तैयार किया गया है। लोकसभा के उम्मीदवारों के चयन में भी संघ परिवार का खुला दखल है। उसकी पूरी कोशिश है कि खांटी संघी काडरों को एक निश्चित संख्या में उम्मीदवार जरूर बनाया जाये, जिससे सरकार बनने पर संघी एजेण्डा लागू करना आसान हो।

कांग्रेस : फिर नेहरू परिवार के सहारे

भारतीय पूँजीपति वर्ग की एक आजमायी हुई और भरोसे वाली पार्टी होने के नाते इस बार चुनाव में पूँजीपतियों का एक हिस्सा कांग्रेस को अपना खुला समर्थन दे रहा है। पूँजीपति घरानों के कुछ अखबार तो कांग्रेस के

(पेज 8 पर जारी)

एक बार फिर वही रस्मी कवायद, वही ढाक के तीन पात

सम्पादकीय डेस्क से

मज़दूर आन्दोलन के फरेबी, मौकापरस्त नेतृत्व ने विगत 24 फरवरी को देशव्यापी आम हड़ताल के एक और अनुष्ठान को सम्पन्न कर दिया। इस आम हड़ताल का आह्वान सरकार की जनविरोधी आर्थिक नीतियों और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा छह माह पूर्व सरकारी कर्मचारियों की हड़ताल के बुनियादी अधिकार को छीनने के विरोध में हुआ था। देश में लोकसभा चुनाव के ऐन पहले सम्पन्न इस कवायद के माध्यम से ट्रेड यूनियन का वर्तमान नेतृत्व महज यह जताना चाहता था कि वह पूरी तरह मरा नहीं है, जिससे मज़दूरों के वोट उनकी सम्बद्ध पार्टियों की झोली में गिराये जा सकें। कहने की जरूरत नहीं कि इस रस्म अदायगी पर सरकार या न्यायपालिका पर न तो कोई फर्क पड़ना था और न ही पड़ा।

चुनाव के मद्देनज़र फिलहाल सरकारी मोर्चे से मज़दूरों पर नया हमला रुका हुआ है, लेकिन उच्चतम न्यायालय की 'सक्रियता' जारी है। हड़ताल से ठीक पूर्व अपने एक ताजा फैसले में उसने धमकी भरे अंदाज में कहा है कि अवैध हड़ताल की स्थिति में हड़ताली कर्मचारियों को नौकरी से भी बेदखल किया जा सकता है। राष्ट्रीय ट्रेड यूनियनों में न तो इस फैसले के खिलाफ कोई सुगबुगाहट दिखायी दी और न ही उनके पास आगे संघर्ष का कोई कार्यक्रम है। ऐसे में आम मज़दूरों के मन में यह सवाल उठना लाज़िमी है कि आखिर इन सांकेतिक हड़तालों और प्रतीकात्मक विरोधों का सिलसिला कब तक चलता रहेगा और इससे मज़दूर वर्ग को हासिल क्या हो रहा है?

24 फरवरी की देशव्यापी हड़ताल

उल्लेखनीय है कि पिछले वर्ष 6 अगस्त को उच्चतम न्यायालय ने देश के मज़दूर वर्ग पर एक बड़ा हमला बोलते हुए सरकारी कर्मचारियों को हड़ताल करने के संवैधानिक, मौलिक व कानूनी अधिकार से वंचित कर दिया था। उसने यहां तक कहा था कि मज़दूरों को हड़ताल करने का कोई नैतिक अधिकार ही नहीं है क्योंकि इससे जनता के जीने के अधिकारों का हनन होता है। फैसले के खिलाफ देश के मज़दूर वर्ग के भीतर बेहद आक्रोश व्याप्त रहा और उसके भीतर संघर्ष की छटपटाहट लगातार बरकरार रही। मज़दूर विरोधी अन्य फैसलों की तरह इस खतरनाक फैसले पर भी राष्ट्रीय स्तर के ट्रेड यूनियन नेतृत्व ने मरियल किस्म की प्रतिक्रिया व्यक्त की। लेकिन मज़दूरों-कर्मचारियों के दबाव के कारण लगभग छह माह बाद संसदीय वामपंथियों से नत्थी यूनियनों को हड़ताल की यह रस्म पूरी करनी पड़ी। उधर पहले से ही संघर्षों से किनारा कर चुकी कांग्रेसी इंटक व भाजपाई (संघी) बीएमएस जैसे महासंघ तो इसमें शामिल तक नहीं हुए।

आह्वानकर्ता नेतृत्व द्वारा आधे-अधूरे मन और किसी व्यापक तैयारी के बगैर आहूत इस हड़ताल में मज़दूरों-कर्मचारियों ने खुलकर भागीदारी निभाई और बैंक, बीमा, रक्षा क्षेत्र से लेकर खनन, गोदी, बागवानी आदि विभिन्न

(पेज 8 पर जारी)

आपस की बात

चुनावी हो-हल्ले और क्रिकेट के उन्माद के बीच मज़दूरों पर सरकारी हमले जारी

एक तरफ चुनाव-चुनाव का खेल शुरू हो चुका है और दूसरी तरफ क्रिकेट मैच का राष्ट्रवादी उन्माद उफान पर है। इस शोर-शराबे के बीच पूँजीपतियों के वफ़ादार मंत्रीगण मेहनतकशों के बुनियादी हक़ों पर हमले जारी रखे हुए हैं।

मज़दूर साथियों को पता है कि आज न्यूनतम वेतन, वेतन पर्ची, हाजिरी कार्ड, लीव बुक, ईएसआई कार्ड और पीएफ तक की सुविधा व्यवहार में हमसे पहले ही छीनी जा चुकी है। बस अब श्रम और कानून मंत्रालय मिलजुल कर इसे कानूनी जामा पहनाने की तैयारी कर रहे हैं। इन मंत्रालयों में बैठे मालिकों के वफादार कुत्ते बड़ा मासूम सा तर्क दे रहे हैं कि विश्व बाजार की होड़ में भारतीय पूँजीपतियों के मालों के टिके रहने के लिये यह जरूरी है कि 50 श्रमिकों वाले उद्योगों को श्रम कानूनों से मुक्त कर दिया जाये। जबकि नोएडा जैसे औद्योगिक नगर में 75 फीसदी उद्योग 50 श्रमिकों की संख्या का है। जहाँ पहले से ही मज़दूरों के साथ अमानवीय व्यवहार किया जा रहा है। न उन्हें समय से वेतन मिलता है न अन्य सुविधाएं। बात-बात पर गाली और धक्के मारकर काम से निकाल देना, दिहाड़ी काट लेना आम बात है। यही लघु उद्योग पूँजी निवेश की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं और भारत में सस्ते श्रम की खुली लूट ने ही अनिवासी भारतीयों में अचानक राष्ट्रप्रेम जगा दिया है।

प्रदेश की नयी सपाई सरकार नये-नये स्थापित उद्योगों को कम से कम पाँच साल तक पंजीकरण और श्रम कानूनों से मुक्त रखना चाहती है, ताकि पाँच सालों में ये उद्योग और इनके मालिक मज़दूरों का खून पीकर ताकतवर राक्षस बन जायें।

इन मंत्रालयों के सुझाव-सलाह पर नामधारी ट्रेड यूनियनों के नेताओं ने रस्मी हाय तौबा मचा रखी है और अखिल भारतीय स्तर पर विरोध करने का ऐलान किया है। लेकिन हम मज़दूरों को इस बात से चेतने की आज सख़्त जरूरत है कि ये वही ट्रेड यूनियनों का नेतृत्व है, जो हमें 56 वर्षों से दुवन्नी-चवन्नी की लड़ाई में थकाता आ रहा है और मौका मिलते ही हमसे गद्दारी पर उतर आता है। आज हम मजदूर संगठित होने के नाम पर इतने निराश हो गये हैं कि ट्रेड यूनियन जैसे अपने मौलिक अधिकार को घृणा की नजर से देखने लगे हैं। संगठन बनाना कोई बुरी चीज नहीं है। संगठन हमारी ताकत है, इस बात को हमें नहीं भूलना चाहिये। हमारी जिम्मेदारी यह है कि हम अपने श्रमिक संगठनों के गद्दार नेतृत्व से पीछा छुड़ाने की तैयारी करें और अपने ऐतिहासिक मिशन को याद करें। वरना हमारे पुरखों ने इन लुटेरे मालिकों से लड़कर जो अधिकार हासिल किये थे, वे एक-एक कर हमसे यों ही छिनते चले जायेंगे।

रामप्रकाश, नोएडा

चुनाव

बिन मुद्दे के आयी हैं,
देखो ये सरकारें,
रोजी-रोटी ताक पे रख के,
लायीं नये सितारे।
चेहरा देखो, काम न देखो,
यही हैं इनके नारे,
जनता को अब दिखलायेंगी,
जादू-तिलिस्म-तमाशे!
जन्तर-मन्तर, छू मन्तर,
फील गुड करो भैया,
ये नुस्खा गर फीका है तो,
देखो 'शाइनिंग इण्डिया'।
बुद्धू बक्सा दिखलाये है,
भारत में खुशहाली,
सचाई तो हम सब जानें,
घर-घर में बदहाली।
बदहाली को दूर कर सकें,
ऐसा क्यों ये सोचें
इनकी तो चिन्ता है बस,
कुर्सी रहें दबोचे।

- गीतिका, इलाहाबाद

सामाजिक सुरक्षा योजना-अटल की हवाबाजी

चुनाव नज़दीक आया तो सारे नेताओं को वोटरों की याद सताने लगी। जल्दी-जल्दी वोट बैंक बढ़ाने के लिये नयी-नयी योजनायें बनाने लगे। हमारे प्रधानमंत्री भला कैसे पीछे रहते। उन्होंने भी फटाफट एक योजना बना ली। असंगठित क्षेत्र (दिहाड़ी मज़दूरों) के कामगारों की सुरक्षा योजना।

जिन नीतियों से आज मज़दूर सड़कों पर ढकेले जा रहे हैं, यानी उदारीकरण-निजीकरण, उसको लागू करवाने में सारी पार्टियां एकमत हैं, पर जब देखा चुनाव नज़दीक आ गया, तो 37 करोड़ असंगठित मज़दूरों की सुरक्षा की चिन्ता सताने लगी।

यह योजना भी एक काग़जी योजना है, जो बस फाइलों में रहेगी। कहने को इस योजना का फायदा उन्हें होगा जो महीने में 6500 रुपये से कम कमाते हैं। यह तो सबको पता है कि असंगठित क्षेत्र में कोई नियम-कानून नहीं चलता। हर नियम का मतलब सिर्फ कागजी होता है, तो यह योजना लागू कैसे होगी? यह तो खैर प्रधानमंत्री ही जानें!

यह योजना पहले देश के 50 जिलों में लागू होगी, जिसमें सभी प्रदेशों की राजधानियाँ शामिल हैं। उत्तर प्रदेश में यह योजना लखनऊ (प्रधानमंत्री का चुनावी क्षेत्र), इलाहाबाद और वाराणसी में लागू होगी। जब नोएडा और कानपुर आदि जैसे औद्योगिक इलाकों में मज़दूरों की संख्या, लखनऊ या इलाहाबाद जैसे इलाकों से बहुत ज्यादा है। जाहिर है कि क्यों यह योजना पहले यहीं लागू हो रही है। सिर्फ चुनावी लाभ के लिये।

इस योजना के तहत किसी मज़दूर को दुर्घटना के समय एक लाख रुपये का बीमा दिया जायेगा। मतलब दुर्घटना बड़ी हो या छोटी बस एक लाख दे कर छुटकारा पा लेना। अगर कोई बीमार पड़ता है, तो उसे मात्र 30 हजार दिया जायेगा। परिवार का मुखिया बीमार पड़ता है तो वर्ष में मात्र 15 दिन तक 50 रुपये प्रतिदिन दिया जायेगा और 15 दिन बाद क्या होगा कोई नहीं जानता। कोई श्रमिक अपंग होता है, तो उसे 500 रुपये की पेंशन मिलेगी। मात्र 500 में घर कैसे चलेगा? यह पैसा भी दान में नहीं दिया जा रहा है, बल्कि 18 से 35 वर्ष के मज़दूरों से रु. 50 प्रतिमाह और 36 से 50 वर्ष के मज़दूरों से रु. 100 प्रतिमाह लिया जायेगा और मालिक से मात्र 100 रुपये प्रतिमाह लिया जायेगा। सरकार देगी 250 रुपये। ये तो सबको पता ही होगा कि मालिक मज़दूरों का अंशदान तो इकट्ठा कर लेगा पर देगा नहीं जैसा हर फैक्ट्री में होता है। यह है सरकार की हवाई योजना।

विपिन, नोएडा

राहुल फाउण्डेशन का नया प्रकाशन

बोल्शेविक पार्टी का इतिहास

जे.वी. स्तालिन द्वारा लिखित और सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की केन्द्रीय समिति के एक आयोग द्वारा सम्पादित यह पुस्तक सोवियत संघ में 1938 में छपी थी। यह पुस्तक दुनियाभर के कम्युनिस्टों के लिए एक अनिवार्य पाठ्यपुस्तक रही है, और आगे भी रहेगी। यह पुस्तक कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में मजदूर वर्ग द्वारा समाजवाद के लिए सफल संघर्ष और समाजवादी निर्माण के अनुभवों और सबकों का निचोड़ प्रस्तुत करती है। यह पुस्तक हमें पूँजी और श्रम के बीच जारी विश्व ऐतिहासिक महासमर में समाजवाद की अपरिहार्य विजय में विश्वास पैदा करती है। निम्न-पूंजीवादी पार्टियों-गुटों, सभी प्रकार के अवसरवादियों, आत्मसमर्पणवादियों, जनता के दुश्मनों और पार्टी के भीतर वामपंथी दुस्साहसवाद तथा दक्षिणपंथी अवसरवाद की प्रवृत्तियों के खिलाफ समझौताहीन संघर्ष चलाते हुए तपकर निखरी बोल्शेविक पार्टी का यह इतिहास हर देश के क्रान्तिकारियों के लिए एक प्रकाशस्तम्भ है।

पृ. 360 मूल्य : 80 रुपये

प्रतियों के लिए जनचेतना के केन्द्रों से संपर्क करें

बिगुल के पाठक साथियों और शुभचिन्तकों से एक अपील

'बिगुल' के पिछले सात वर्षों का सफर तरह-तरह की कठिनाइयों-चुनौतियों से जूझते गुजरा है। इस दौरान अनेक नये हमसफर हमारी टीम से जुड़े हैं और पाठक-साथियों का दायरा भी काफी बढ़ा है। कहने की जरूरत नहीं कि अब तक का कठिन सफर हम अपने हमसफरों और शुभचिन्तकों के संग-साथ के दम पर ही पूरा कर सके हैं। हालात संकेत दे रहे हैं कि आगे का सफर और अधिक कठिन और चुनौती भरा ही नहीं बल्कि जोखिमभरा भी होगा। हमें विश्वास है कि हम अपने दृढ़संकल्प और हमसफर दोस्तों की एकजुटता के दम पर आगे ही बढ़ते रहेंगे।

'बिगुल' अपने पुरअसर तेवर और अपने विशिष्ट जुझारू अंदाज के साथ आपके पास नियमित पहुंचता रहे, इसके लिए अखबार के आर्थिक पहलू को और अधिक पुख्ता बनाना जरूरी है। जाहिर है कि यह अपने संगी-साथियों और शुभचिन्तकों की मदद के बिना मुमकिन नहीं। हमारी आपसे पुरजोर अपील है कि :

- **बिगुल के स्थायी कोष के लिए अधिकतम संभव आर्थिक सहयोग भेजें।**
- **जिन साथियों की सदस्यता समाप्त हो चुकी है वे यथाशीघ्र नवीनीकरण करा लें।**
- **बिगुल के नये सदस्य बनायें।**
- **बिगुल के वितरण को और व्यापक बनाने में सहयोग करें।**
- **कुछ वितरक साथियों के पास बिगुल के कई अंकों की राशि बकाया है। इसे यथाशीघ्र भेजकर बिगुल नियमित प्राप्त करना सुनिश्चित कर लें।**

सहयोग राशि बैंक ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से सम्पादकीय कार्यालय के पते पर भेजें। बैंक ड्राफ्ट 'बिगुल' के नाम से भेजें।

-सम्पादक

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियां

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी- अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ
दिल्ली सम्पर्क : 29, यू.एन.आई. अपार्टमेण्ट, जीएच-2, सेक्टर-11, वसुंधरा,गाजियाबाद-201010
ईमेल : bigulakhbar@hotmail.com

मूल्यः एक प्रति-रु. 3/- वार्षिक-रु. 40.00 (डाक खर्च सहित)

बिगुल

'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध :

1. डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
2. जनचेतना स्टाल, काफी हाउस बिल्डिंग, हजरतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे तक)
3. जाफरा बाजार, गोरखपुर-273001
4. 989, पुराना कटरा, यूनिवर्सिटी रोड, मनमोहन पार्क, इलाहाबाद
5. जनचेतना सचल स्टाल (ठेला) चौड़ा मोड़, नोएडा (शाम 5 से 8)

मेहनतकश साथियों के लिए जरूरी कुछ पुस्तकें

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा -लेनिन 5/-
मकड़ा और मक्खी -विल्हेल्म लीब्कनेख्त 3/-
ट्रेड यूनियन काम के जनवादी तरीके -सर्जी रोस्तोवस्की 3/-
अनवश्वर है सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं 10/-
समाजवाद की समस्याएं, पूंजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति 12/-
क्यों माओवाद? 10/-
बुर्जुआ वर्ग पर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में 5/-
मई दिवस का इतिहास 5/-
अक्टूबर क्रान्ति की मशाल 12/-
पेरिस कम्यून की अमर कहानी 10/-

बिगुल विक्रेता साथी से मांगें या इस पते पर 17 रु. रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर मनीआर्डर भेजें: जनचेतना, डी-68, निराला नगर, लखनऊ।

आपस की बात

मेरा मित्र 'बिगुल'

मैं तीन-चार महीने से 'बिगुल' का नियमित पाठक हूँ। जब से मैं 'बिगुल' का पाठक बना हूँ तब से मुझे ऐसा लग रहा है कि मुझे खोया हुआ सच्चा मित्र मिल गया है। मैं 'बिगुल' को पढ़कर बहुत खुश होता हूँ, क्योंकि इसमें जिन्दगी की सचाई पेश की जाती है कि आम आदमी का जीवन कैसा है, वह कितनी मेहनत करता है और फिर भी पेट में सही ढंग से रोटी नहीं जाती। नौजवान पढ़-लिखकर तबाह हो रहा है। कोई भी रोजगार नहीं है। उनकी जिन्दगी अन्धेरे की तरफ जा रही है। इसलिये आज इन्क़लाबी आवाज़ उठाने वाले अखबार की जरूरत है और यह काम 'बिगुल' सही ढंग से कर रहा है। दूसरे अख़बारों को बेमन से उलट-पलट कर देख तो लेता हूँ, लेकिन उनमें तो वही रोज की घिसी-पिटी बातें, चुनावी मदारियों के नाटक, ढकोसले तथा झूठी बयानबाजी मिलती है। लेकिन 'बिगुल' एकदम सच बोलता है। 'बिगुल' पढ़ता हूँ, तो लगता जैसे साक्षात मेरा कोई मित्र मुझे मुँह से बोलकर सुना रहा है। इसलिये मैं अपने इस 'बिगुल मित्र' को हर महीने घर बुलाता हूँ। कितना अच्छा होता अगर मेरा यह मित्र मुझे बहुत पहले से मिल रहा होता। इतना लेट मिलने पर भी मैं 'बिगुल मित्र' का धन्यवाद देता हूँ।

- राजेश खासा, सोनीपत

दिल्ली जल-बोर्ड : सुरक्षा उपायों के अभाव में मरते मजदूर

आज जब व्यवस्था का हर अंग सड़-गल कर बजबजा रहा है, उसकी सड़ांध को सबसे ज्यादा झेल रहा है-मजदूर। इस पूरी व्यवस्था में जिस चीज की सबसे ज्यादा तौहीन होती है वह है-मनुष्य। उसके जीवन का कोई मोल ही नहीं, मान-सम्मान की तो खैर बात ही क्या?

इसका सबसे ताजा उदाहरण है जीवन को दांव पर लगाकर जीवन बचा लेने की जुगत में ठेके पर दिहाड़ी करने वाले लगभग 15 मजदूर। ये मजदूर 'दिल्ली जल बोर्ड' के लिये काम करने के दौरान अपनी जान गंवा बैठे। कारण था व्यवस्था द्वारा सुरक्षा उपायों में की गयी लापरवाही।

मालूम हो कि जल बोर्ड अपने 22 सीवेज ट्रीटमेण्ट प्लाण्ट के जरिये प्रतिदिन 30.04 करोड़ गैलन गन्दे पानी का शोधन करता है। महानगर में बिछे सीवर और नालियों के जरिये यह पानी ट्रीटमेण्ट प्लाण्टों तक पहुंचता है। इसकी सफाई ठेके पर रखे गये दिहाड़ी मजदूर करते हैं।

22 मार्च को ब्रह्मपुरी सीवेज पम्पिंग स्टेशन पर एक हादसा हुआ। आर के प्रोजेक्ट नामक एजेंसी के अन्तर्गत काम कर रहा यह मजदूर सफाई के लिये स्टेशन में उतरा था। सफाई करते हुए उस व्यक्ति का दम घुट गया। अगर वहां सुरक्षा के चंद बुनियादी उपाय किये गये होते तो उसकी जान न जाती। इसके बाद फिर अप्रैल में शक्ति नगर में हुई दुर्घटना में तीन लोग मारे गये।

ये लोग वर्म इण्डिया लिमिटेड के लिये काम कर रहे थे। ऐसा ही हादसा कुछ समय बाद प्रतापनगर में हुआ। 25 जून को रिठाला सीवेज स्टेशन प्लाण्ट में 5 लोग मारे गये। नवम्बर'03 में उत्तम नगर पम्पिंग स्टेशन की सफाई करते हुए तीन लोग मारे गये। अभी तक इस तरह के हादसों में कुल 15 लोग मारे जा चुके हैं। कारण एक है कि काम करते हुए इन लोगों के पास पर्याप्त सुरक्षा इंतजाम नहीं थे।

यही हाल खानों में काम करते मजदूरों का है। सुरक्षा मानकों का पालन न होने के कारण आये दिन मजदूरों की मौतें होती रहती हैं। यह व्यवस्था उनकी जिन्दगियों से आज तो खिलवाड़ कर रही है पर जब ये मेहनत करने वाले एक होंगे और पलटवार करेंगे तो निश्चित तौर पर यह व्यवस्था दम तोड़ देगी और इसकी जगह आयेगी नयी व्यवस्था जिसमें आदमी के शोषण की कोई गुंजाइश ही न हो, जिसके केन्द्र में होगा-'मानव जीवन', निर्बाध, असीम सम्भावनाओं से युक्त, अनन्त क्षमताओं से युक्त। यह नयी व्यवस्था है-समाजवादी व्यवस्था।

राहुल सांकृत्यायन ने भारत में समाजवाद का सपना देखा था। हर मेहनत करने वाले की सुरक्षा की गारण्टी तो उस व्यवस्था में होगी ही, साथ ही साथ हर कोई बराबर होगा। सबके काम करने के घण्टे सीमित होंगे। सबको मनोरंजन की सुविधा मिलेगी। सबके बच्चे खूब अच्छी शिक्षा पा सकेंगे। हर कोई अपनी मर्जी से काम करेगा इसलिये विज्ञान और तकनीकी में खूब तरक्की होगी।

पीटर क्रोपोटकिन के शब्दों में-". ..तब सभी मनुष्य सबके साथ मिलकर, सबके साथ काम करते हुए अपने श्रम के फलों का पूरा आनन्द उठाते हुए अपनी सभी क्षमताओं का भरपूर विकास करते हुए एक विवेकपूर्ण, मानवीय और सुखपूर्ण जीवन बितायेंगे।"

- मनोहर लाल , दिल्ली

पुरानी गलतियों से सीखकर आगे बढ़ो

हम लोग खटीमा औद्योगिक क्षेत्र में कार्यरत मज़दूर हैं। यहाँ कई विभाग के ऑफिस हैं। तीन मध्यमवर्गीय प्राइवेट फैक्ट्रिया हैं। सरकारी क्षेत्र में दो-तीन विद्युत परियोजनाएं भी कार्यरत हैं। इसके अलावा वन विभाग में भी मजदूर हैं।

मगर यहाँ की जो तीन गैर सरकारी फैक्ट्रिया हैं उनके मज़दूरों की हालत बड़ी दयनीय है। दो फैक्ट्रियों में तो ट्रेड यूनियनें हैं। इनका बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ जीतने का इतिहास है। लेकिन एक मिल का मालिक स्थानीय है। उसने तिकड़म लगा कर आज तक मज़दूरों की यूनियन नहीं बनने दी।

मज़दूर एक हैं, लेकिन यूनियनों में फूट के कारण यहाँ की कम्पनियों के मज़दूरों की हालत खस्ता है। मजदूर जोखिम उठाने को तैयार नहीं।

हालाँकि, मज़दूर नेताओं के पास तो नहीं जाते, पर अपनी रोजी-रोटी का सवाल सुलझाने का जोखिम भी वे नहीं लेते। पहले हुई गलतियों को बार-बार सोचकर लड़ाई से विमुख होने का अवसर नहीं है। कम्पनियाँ चाहे जो भी हों 'बारी-बारी, सबकी बारी' की नीति पर चल रही हैं। तृतीय और चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों पर गाज गिरने वाली है।

खटीमा में बैंक, बीमा, सरकारी विभागों में लगे कर्मचारियों एवं गैर सरकारी फैक्ट्रियों में लगे कर्मचारियों की एकता एक बड़ी शक्ति बन सकती है। लेकिन अभी यह दिवा स्वप्न है। आवश्यकता है सांगठनिक ताकत की।

- एक कर्मचारी
खटीमा (ऊधमसिंहनगर)

आउटसोर्सिंग विवाद : विश्व पूँजीवादी तंत्र के अन्तरविरोधों की अभिव्यक्ति

अमेरिकी सीनेट द्वारा हाल ही में संघीकाय सरकार के ठेकों की आउटसोर्सिंग (अमेरिका से बाहर काम करवाना) पर रोक सम्बन्धी कानून पास करने के साथ ही आउटसोर्सिंग को लेकर पिछले कई महीनों से चल रहा विवाद और गहरा गया है। इस कानून से एक ओर जहाँ अमेरिका के निजी क्षेत्र के पूँजीपतियों में खासी नाराजगी है वहीं भारत सरकार और सूचना तकनीक क्षेत्र के भारतीय पूँजीपतियों ने भी इस पर विरोध जताया गया है। सवाल उठता है कि इस आउटसोर्सिंग का झमेला आखिर है क्या? हमें यह भी समझना चाहिये कि आउसोर्सिंग पर रोक सम्बन्धी अमेरिकी कानून का देश के मजदूर वर्ग पर क्या असर पड़ने वाला है। खासकर इसलिये भी क्योंकि सीटू और एटक जैसी देश की प्रमुख ट्रेड यूनियनों ने भी अमेरिकी कानून का विरोध किया है।

क्या है आउटसोर्सिंग?

सामान्य प्रचलित अर्थों में लिया जाये तो आउटसोर्सिंग कोई नयी बात नहीं है। जबसे पूँजीवाद का उदय हुआ है तब से यह जारी है। इस सामन्य अर्थ में मैन्युफैक्चरिंग की प्रक्रिया में एक कारखाने के काम को दूसरी सहायक इकाइयों से करवाने को भी आउटसोर्सिंग कहा जा सकता है। उपनिवेशवाद के दौर में प्रचलित उस औद्योगिक एवं व्यापारिक कारोबार को भी हम आउटसोर्सिंग का नाम दे सकते हैं जब उपनिवेशवादी ताकतें अनेक औद्योगिक एवं व्यापारिक गतिविधियों को उपनिवेशों में संचालित करती थीं। लेकिन फिलहाल जिस आउटसोर्सिंग को लेकर बवाल मचा है वह भूमण्डलीकरण के मौजूदा दौर की परिघटना है जो सूचना प्रौद्योगिकी के अभूतपूर्व विकास के चलते दुनिया के इजारेदार-पूँजीपति घरानों की गलाकाटू होड़ से उभरकर सामने आयी है।

मौजूदा विवाद सूचना तकनोलॉजी और उससे जुड़ी विभिन्न उपभोक्ता सेवाओं को अमेरिका-यूरोप जैसे विकसित पूँजीवादी देशों से भारत, चीन, फिलिपीन्स आदि जैसे तीसरी दुनिया के पिछड़े पूँजीवादी देशों में हस्तान्तरण से पैदा हुआ है। कम लागत और अधिक से अधिक मुनाफे की लालच में विकसित पूँजीवादी देशों के पूँजीपति सूचना तकनोलॉजी से जुड़ी और उस पर आधारित विभिन्न उपभोक्ता सेवाओं को भारत जैसे देशों में स्थानान्तरित करने की ओर अधिक से अधिक उन्मुख होते जा रहे हैं। कारण साफ है-इन देशों में उपलब्ध सस्ता श्रम। एक मोटे आकलन के अनुसार अमेरिका में इन कामों को करवाना दस गुना महँगा पड़ता है। 1990 के दशक की शुरुआत में भारत जैसे देशों से सूचना तकनीक क्षेत्र के पेशेवरों को अपने देशों में बुलाकर काम करवाने का चलन अमेरिका और यूरोप में ज्यादा था। लेकिन लागत घटाने और मुनाफा और अधिक बढ़ाने की गरज से इस दशक के आखिरी हिस्से में कामों को ही उन देशों में भेजने का चलन जोर पकड़ने लगा। पिछले तीन-चार सालों से भारत में ऐसी गतिविधियों का तेजी से फैलाव हुआ है।

अमेरिका-यूरोप से भारत जैसे देशों में जिस तरह के काम हस्तान्तरित हुए हैं, उनमें उपभोक्ताओं को विभिन्न प्रकार की जानकारियाँ देने वाली सेवाएँ (कॉल सेण्टर यही काम करते हैं), विभिन्न प्रकार के दफ्तरी काम, एकाउण्टिंग, डाटा एंट्री, मानव संसाधन सेवाएँ, मार्केट रिसर्च और विभिन्न प्रकार की कंसल्टेंसी सेवाएँ, मेडिकल ट्रांसक्रिप्शन आदि के नाम गिनाये जा सकते हैं।

अमेरिका और यूरोप की कम्पनियों ने भारत में इन सेवाओं की आउटसोर्सिंग के लिये विशेष दिलचस्पी दिखायी है। कारण यह है कि पिछली आधी सदी के दौरान भारत में पूँजीवादी शिक्षा का जिस सीमित स्तर पर भी प्रचार-प्रसार हुआ है उसके चलते अंग्रेजी बोलने वाले और कम्प्यूटर ऑपरेशन जानने वाले मध्यवर्गीय बेरोजगार लड़के-लड़कियों की भारी जमात पैदा हुई है। रोजगार की तलाश में भटकती इस आबादी के लिए आउटसोर्सिंग नौकरियाँ बेहतर विकल्प नज़र आ रही हैं। सात-आठ हजार रुपये में रात की पाली में विदेशी रोजगारदाताओं को अपनी श्रमशक्ति बेचना इन्हें घाटे का सौदा नहीं लगता। फिलहाल यह सोचना उनके एजेण्डे में नहीं है कि ये विदेशी कम्पनियाँ उनका कितना शोषण कर रही हैं।

मुनाफाखोरों की होड़ का नतीजा

एक मोटे अनुमान के अनुसार अगले पाँच वर्षों में तीस लाख से लेकर पचास लाख तक अमेरिकी नौकरियाँ भारत जैसे देशों में स्थानान्तरित हो सकती हैं। ब्रिटेन से भी स्थानान्तरित होने वाली नौकरियों की संख्या लाखों में होगी। दरअसल, भूमण्डलीकरण के मौजूदा दौर में तेजी से विकसित हुए सेवा क्षेत्र की अग्रणी कम्पनियों के बीच गलाकाटू होड़ इतनी तीखी है कि कोई भी आउटसोर्सिंग के धन्धे में पीछे नहीं रहना चाहता। कम्पनियाँ एक-दूसरे से होड़ में तभी टिकी रह सकती हैं जब लागत कम होती रहे और मुनाफे की दर बढ़ती रहे। लेकिन जैसा कि हमेशा होता है विश्व पूँजीवादी तंत्र अपने संकटों से उबरने की जो भी नयी तरकीब खोज निकालता है वह उलटकर नये-नये संकटों को जन्म देती हैं। यह पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली का बुनियादी तर्क है। आउटसोर्सिंग को लेकर उठा ताजा विवाद और संकट इसी बुनियादी तर्क से पैदा हुआ है।

अमेरिका और यूरोप के पूँजीपतियों द्वारा नौकरियाँ भारत जैसे देशों में हस्तान्तरित करने से वहाँ बेरोजगारी बढ़ रही है। इससे वहाँ की मेहनतकश आबादी में काफी आक्रोश है। पिछले दिनों खबरें आयी थीं कि अमेरिका और ब्रिटेन में आउटसोर्सिंग करने वाली कम्पनियों के दफ्तरों के बाहर न केवल प्रदर्शन हुए वरन उन कम्पनियों की सेवाओं के बहिष्कार के अभियान भी चलाये गये। मतलब यह कि आउटसोर्सिंग से अमेरिका-ब्रिटेन जैसे देशों में एक नया सामाजिक संकट जन्म ले चुका है। चुनावी साल होने के नाते अमेरिका में डेमाक्रेटिक पार्टी के नेताओं ने राष्ट्रपति जॉर्ज बुश को इस मसले पर घेरना शुरू किया। हालाँकि, डेमोक्रेटिक पार्टी खुद अमेरिकी कारपोरेट घरानों की सेवा करने में बुश की रिपब्लिकन पार्टी से एक कदम भी पीछे नहीं है, लेकिन चुनावी साल में उसने कारपोरेट घरानों की नाराजगी मोल लेकर भी आउटसोर्सिंग को मुद्दा बना दिया। इससे जार्ज बुश को रक्षात्मक रुख अख्तियार करने पर मजबूर होना पड़ा। इसी का नतीजा था अमेरिकी सीनेट में आउटसोर्सिंग पर एक हद तक लगाम लगाने वाला बिल। हालाँकि, यह कानून निजी कम्पनियों पर रोक नहीं लगाता। यह केवल संघीय सरकार के ठेके के काम दूसरे देशों से करवाने पर रोक लगाता है, लेकिन अमेरिकी पूँजीपतियों को चिन्ता इस बात से है कि कहीं जनदबाव में सरकार कानून के दायरे को निजी क्षेत्र तक भी न फैला दे।

अमेरिकी कानून का देशी पूँजीपतियों पर असर

इस अमेरिकी कानून का केवल सीमित हद तक ही असर भारत के सूचना

(पेज 9 पर जारी)

दमन झेलकर भी मिले सिर्फ आश्वासनों के झुनझुने!

पंतनगर का मजदूर आन्दोलन

बिगुल संवाददाता

पंतनगर (ऊधमसिंह नगर)। पंतनगर कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के मजदूर एक बार फिर ठगे से रह गये। पुलिस के बर्बर दमन के बाद यहां के मजदूरों ने अपने जबर्दस्त विरोध प्रदर्शन से तीन दिनों तक पंतनगर की पूरी व्यवस्था को लगभग ठप सा कर दिया था। लेकिन विश्वविद्यालय प्रशासन के घड़ियाली आंसू और प्रदेश सरकार के मक्कारी भरे आश्वासन पर भरोसा करते हुए नेतृत्वकारी तीन यूनियनों के साझा मोर्चे ने आन्दोलन स्थगित कर दिया।

उल्लेखनीय है कि पंतनगर की 3300 एकड़ बेशकीमती जमीन पर औद्योगिक नगरी बसाने के विरोध में और विश्वविद्यालय व फार्म के बजट के एकीकरण, ठेकाकरण खत्म करने, 240 दिन पूरा कर चुके 8-10 वर्षों से कार्यरत अस्थायी मजदूरों के नियमितीकरण सहित 14 सूत्री मांगपत्रक को लेकर यहां की तीन प्रमुख यूनियनों के एक साझा मोर्चे द्वारा लम्बे समय से आन्दोलन चलाया जा रहा था। इसी क्रम में विगत 27 जनवरी से मजदूरों का क्रमिक अनशन, प्रदर्शन आदि कार्यक्रम भी शुरू हो गया था। उधर वि.वि. प्रशासन आन्दोलन कुचलने के लिये मुस्तैद था। उसने राज्यपाल से हड़ताल पर प्रतिबन्ध का शासनादेश ले रखा था तथा न्यायालय से धरना-प्रदर्शन पर रोक का स्थगनादेश प्राप्त कर लिया था। उसने यूनियन नेताओं पर कई मुकदमे कायम कर दिये थे। इसके बावजूद यहां के मजदूर इस बार आर-पार की लड़ाई के लिये कृतसंकल्प थे।

दमन ने दिया एक बड़े आन्दोलन को जन्म

आन्दोलन के इसी क्रम में 18 मार्च को आम सभा के बाद लगभग एक हजार महिला व पुरुष मजदूरों ने कैम्पस में जुलूस निकाला। सायं लगभग पांच बजे जुलूस अपने अन्तिम पड़ाव पर पहुंचने वाला था कि इण्टरनेशनल गेस्ट हाउस, जहां पुलिस चौकी भी है, के निकट अचानक पहले से मौजूद पुलिस फोर्स ने जुलूस पर लाठी चार्ज कर दिया। पुलिस ने महिलाओं को भी नहीं बख्शा और पंतनगर कर्मचारी संगठन के अध्यक्ष, मंत्री सहित दर्जन भर महिला-पुरुष मजदूर घायल हुए। इधर जुलूस में भगदड़ मच गयी, उधर पुलिस दो नेताओं सहित छह मजदूरों को पीटते हुए उठा ले गयी।

पुलिसिया दमन की इस घटना ने 1978 के बर्बर गोलीकाण्ड की याद ताजा कर दी और देखते ही देखते हजारों मजदूरों ने लाठीचार्ज स्थल पर जाम लगा दिया और मोर्चे ने हड़ताल की घोषणा कर दी। व्यापक जनदबाव को देखते हुए दो घण्टे बाद पुलिस को गिरफ्तार मजदूरों को छोड़ना पड़ा, लेकिन आक्रोशित मजदूरों का जाम, प्रदर्शन व हड़ताल का यह सिलसिला तीन दिनों तक कायम रहा और पूरे कैम्पस की व्यवस्था लगभग थम सी गयी।

गौरतलब है कि पुलिस दमन के ठीक दो दिन पहले पंतनगर के मटकोटा ब्लाक की जमीन को डाबर व अन्य कम्पनियों को हस्तगत करने के लिये नाप-जोख करने पहुंची पुलिस व प्रशासन की टीम को वहां के मजदूरों ने जबर्दस्त प्रतिरोध के बाद वापस कर दिया था, जिस पर जिलाधिकारी ने सख्ती से निपटने की धमकी दी थी। यूनियन नेतृत्व ने इस पर आन्दोलन की कोई व्यापक रणनीति नहीं बनाई। उधर जिला व विश्वविद्यालय प्रशासन ने बड़े ही शातिराना तरीके से वि.वि. परिसर में दमन का पाटा चलाकर आन्दोलन को परिसर में केन्द्रित करवा दिया और इसके बाद भारी पुलिस फोर्स के साथ अगले दिन उसने जमीनों की पैमाइश शुरू कर दी। हालांकि, इसका भी प्रतिरोध वहां घरों में मौजूद महिलाओं ने किया और नैनीताल मुख्य मार्ग पर जाम लगा दिया। नेतृत्व यहां भी चूक गया और उसने जाम खुलवा दिया और प्रशासन पैमाइश करने में कामयाब रहा।

उधर आन्दोलनकारी यूनियनों के मोर्चे की, प्रदेश की काबीना मंत्री इन्दिरा हृदयेश व विश्वविद्यालय प्रशासन से वार्ताओं के बाद मुकदमे आदि की वापसी, लाठीचार्ज की सीबीसीआईडी जांच व 23 फरवरी को देहरादून में इन्दिरा हृदयेश, मुख्य सचिव आर.एस. टोलिया व कृषि सचिव ओमप्रकाश की कमेटी में (जो कि पूर्व निर्धारित कार्यक्रम था) मामले के हल के आश्वासन के साथ उठान पर पहुंच चुका यह आन्दोलन बड़े ही नाटकीय ढंग से 21 फरवरी की सुबह समाप्त हो गया। पिछली रात से ही आन्दोलन के ऐसी ही किसी परिणति तक पहुंचने की आशंका से मजदूरों में नाराजगी व्याप्त होने लगी थी और सुबह जाम हटाने व यूनियन मंच से कुलपति द्वारा मजदूरों के सम्बोधन और नेताओं द्वारा आन्दोलन वापसी की घोषणा के बाद तो एक बार बगावत की स्थिति पैदा हो गयी थी।

फिर ढाक के तीन पात

जैसी कि उम्मीद थी, देहरादून में 23 फरवरी और 29 फरवरी को वार्ताओं की महज औपचारिकताएं हुईं, बैठकों से काबीना मंत्री गायब रहीं। कुल मिलाकर वही ढाक के तीन पात रहा। इधर सरकार को चुनावी आचार संहिता का कवच भी मिल गया। मजदूर एक बार फिर ठगे गये।

वैसे तो मार्चे ने अपने चौदह सूत्री मांग पत्रक में यहां की बेशकीमती जमीनें लुटेरे कारखानेदारों को देने से रोकने की सीधी सी कोई बात की ही नहीं थी। पांचवी मांग के तहत महज यह मांग रखी गयी थी कि 'विश्वविद्यालय फार्म तथा अन्य यूनिटों की भूमि अन्य को स्थानान्तरण से पूर्व उनके तथा उनके आश्रितों को आवासीय भूमि उपलब्ध करायी जाये।' एक ऐसे समय में, जबकि यहां के मजदूरों के अस्तित्व पर ही खतरा मंडरा रहा है, तब दिये गये मांगपत्रक में ज्यादातर सुविधाओं-सहूलियतों की बढ़ोत्तरी वाली आर्थिक मांगें ही शामिल रहीं। हो सकता है कि देर-सवेर सरकार इनमें से कुछ मांगों को मान ले, लेकिन वर्तमान स्थिति में ठेकाकरण के खात्मे, पंतनगर की जमीनों को बचाने या इन जमीनों में लगने वाले उद्योगों में यहां की भारी बेरोजगार आबादी को नौकरी की गारण्टी की भी कोई सम्भावना नजर नहीं आ रही है। यही नहीं, आन्दोलन ठण्डा होने के बाद ज्यादा सम्भावना यह है कि 240 दिन का मानक पूरा कर चुके मृतक आश्रित मस्टर लिस्टेड अस्थायी मजदूरों के नियमितीकरण का मुद्दा भी ठण्डे बस्ते में चला जाये।

सोचने के लिये कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु

पंतनगर में दमन व निरंकुशता का पुराना इतिहास रहा है। 26 वर्ष पूर्व 1978 में आन्दोलनरत मजदूरों के शान्तिपूर्ण जुलूस को खाकी वर्दीधारियों द्वारा बन्दूकों और संगीनों से लाश के ढेर में तब्दील कर देने की बर्बर घटना, दूसरे जलियावाले बाग काण्ड के रूप में आजाद भारत के इतिहास के काले पन्नों में दर्ज है। इतने वर्षों बाद भी आज तक दमन के इस कुकृत्य के लिये कोई भी दण्डित नहीं हुआ।

इस परिप्रेक्ष्य में और भूमण्डलीकरण की वर्तमान मजदूर विरोधी नीतियां लागू होने के दौर में पंतनगर मजदूरों के इस संघर्ष को छोटे रूप में नहीं, बल्कि व्यापक रूप से देखा जाना चाहिये। आज का मजदूर आन्दोलन उस मुकाम पर खड़ा है, जहां स्थानीय स्तर पर ही वहां का शासन-प्रशासनस उसे कुचलने में कामयाब हो रहा है। जबकि मजदूर आन्दोलन का वर्तमान नेतृत्व इन आन्दोलनों को व्यापक रूप देने में अक्षम साबित हो रहा है। पंतनगर के वर्तमान मजदूर आन्दोलन में भी यही स्थिति नजर आयी। ऐसे में इस आन्दोलन के भी कुछ महत्वपूर्ण निचोड़ निकलते हैं, जो एक आत्ममंथन की मांग करता है। नहीं तो, जैसा कि यहां हुआ, विश्वविद्यालय प्रशासन तमाम मुद्दों को शासन के मत्थे मढ़ता रहेगा, दमन करवाता रहेगा और मजदूर प्रदर्शनों की रुटीनी कवायद करते-करते अन्त में थक-हार कर बैठ जायेगा।

पहली बात तो यह है कि आज पूरे देश के मजदूरों की चेतना और उनके आन्दोलनों का गैर राजनीतिकरण हुआ है। ट्रेड यूनियन आन्दोलन के अर्थवादी नेतृत्व द्वारा लम्बे समय से लगातार पेंशन-भत्ते-सुविधाओं की छोटी-छोटी लड़ाइयों में उलझाये रखने और नेतृत्व की नौकरशाही ने ये हालात पैदा किये हैं, जिसकी एक झलक पंतनगर में भी देखने को मिली।

दूसरे, देशभर में जो घातक नीतियां लागू हो रही हैं और मजदूरों के एक के बाद एक हक छिनते जा रहे हैं, लड़ाइयां पराजित हो रही हैं, उनकी एक वजह व्यापक एकजुटता का अभाव है। अलग-अलग विभागों से लेकर एक ही जगह कई यूनियनों के बंटवारे मजदूर आबादी को एक होने ही नहीं देते। पंतनगर में भी दर्जनभर यूनियनें मौजूद हैं, पर इस आन्दोलन में भी महज तीन यूनियनों का मोर्चा बन सका ।

तीसरे, यह आम तौर पर देखने में आ रहा है कि पूरे देश के पैमाने पर मौजूदा नेतृत्व में राजनैतिक इच्छाशक्ति का बेहद अभाव है, जिससे आन्दोलन की लम्बी तैयारी, आन्दोलन को लम्बे समय तक चलाने का धैर्य और उसे इलाके की व्यापक मेहनतकश आबादी तक पहुंचाने का कोई कार्यक्रम मौजूद नहीं रहता है। पंतनगर में भी यही स्थिति रही।

यह आन्दोलन भी कैम्पस के भीतर सिमट गया

अगर हम गौर करें तो पायेंगे कि बेहद कठिन परिस्थितियों में अपने खून-पसीने से पंतनगर की जिस जमीन को यहां के मजदूरों ने बेशकीमती बनाया, उसे देश-दुनिया के पूंजीवादी लुटेरों को कौड़ियों के भाव सरकार बेच रही है। इसके विरोध में क्या इस क्षेत्र की व्यापक आबादी को साथ नहीं लिया जाना चाहिये था? ऐसी स्थिति में क्या नेतृत्व को व्यापक जनता के नाम अपील नहीं निकालनी चाहिये थी?

दूसरे, यहां की यूनियनें एटक, इंटक आदि किसी न किसी ट्रेड यूनियन महासंघ से सम्बद्ध हैं। ये महासंघ संघर्ष से तो दूर होते ही गये हैं साथ ही एक जगह के संघर्ष को दूसरे क्षेत्र की मेहनतकश आबादी तक फैलाने का भी प्रयास छोड़ चुके हैं। यहां भी देखें तो पुलिस दमन जैसी बड़ी कार्रवाई के बाद भी इन महासंघों की भूमिका क्या रही? देश की कौन कहे वे इसे प्रदेश के मजदूरों के बीच भी नहीं फैला सके। यही नहीं मोर्चे की घटक दो यूनियनें तो इंटक से सम्बद्ध थीं और इंटक का प्रदेश अध्यक्ष व श्रम मंत्री दोनों एक ही व्यक्ति हैं। फिर भी सही मांग के लिये संघर्ष पर हालात दमन के व परिणाम शून्य रहा, आखिर क्यों? क्या ऐसे महासंघों से अब भी कोई उम्मीद की जा सकती है?

तीसरे, यह सच है कि फीसों में भारी वृद्धि ने पंतनगर कैम्पस का चरित्र कुलीन बना दिया है। 1970 के काण्ड में कंधे से कंधा मिलाकर चलने वाले छात्रों के मुकाबले आज की छात्र-युवा आबादी अलग-थलग पड़ी है। यहां की शिक्षक आबादी की अलग मानसिकता है और उनमें से ज्यादातर व्यवस्था के पक्षधर हो चुके हैं, फिर भी क्या यूनियन नेतृत्व को छात्रों-शिक्षकों के नाम अपीलें जारी नहीं करनी चाहिये थीं?

निश्चित रूप से यह समय कैम्पस के छात्र-शिक्षक व बेरोजगार युवा आबादी और क्षेत्र की व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच जाने का था, क्योंकि आने वाले समय में इसका पूरा असर पूरे कैम्पस पर और पूरे इलाके पर पड़ने वाला है। आज के हालात बताते हैं कि आने वाले कुछ वर्षों में पंतनगर टुकड़े-टुकड़े में ढेरों निजी कम्पनियों को सौंप दिया जायेगा। मजदूरों का एक हिस्सा सड़कों पर धकेल दिया जायेगा और बाकी कई मालिकों के पास छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट जाएंगे। इनमें से कुछ सफेद कालर के अभिजात मजदूर बन जाएंगे। कुल मिलाकर पहले से ही टुकड़ों में बंटी यहां की आबादी और छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट जाएगी।

फिर रास्ता क्या है?

यह सच है कि वर्तमान समय में परिस्थितियां मजदूर वर्ग के प्रतिकूल हैं। सरकारों से लेकर न्यायपालिका तक सभी आज खुलकर लुटेरे मालिकों के पक्ष में खड़े हैं और पुलिस व स्थानीय प्रशासन की मशीनरी मजदूरों के दमन के लिए पूरी तरह से मुस्तैद हैं। आज भ्रम की कोई स्थिति नहीं रह गयी है। इसलिये मजदूर आबादी के पास एक ही रास्ता रह गया है-आर-पार की लड़ाई की लम्बी तैयारी, अपने एक सेक्टर या यूनियन में केन्द्रित होने की जगह आस-पास की व्यापक आबादी को गोलबन्द करने की तैयारी का रास्ता।

मजदूरों का वर्ग क्रान्तिकारी वर्ग है और क्रान्तिकारी यथार्थवादी होते हैं इसलिये वे असंभव को संभव बनाने का काम करते हैं। लेकिन यह काम महज छोटी-छोटी मांगों पर लड़ने और आश्वासनों पर संघर्षों को पीछे धकेलने या रोकने का काम करने वाला नेतृत्व नहीं बल्कि व्यापक विजन वाला नया जुझारू नेतृत्व ही पूरा कर सकेगा। पंतनगर के वर्तमान मजदूर आन्दोलन का भी यही सबक है।

भेड़ियों, कुत्तों, लकड़बग्घों और सुअरों के बीच से

आखिर हम किसको चुनें?

ये सभी पूंजीवादी नरभक्षी राक्षसों के टुकड़खोर पालतू हैं!

यह चुनाव एक धोखा है!

विकल्प क्या है?

संसदीय राजनीति का त्याग करो!

क्रान्ति के मार्ग पर आगे बढ़ो!!

पॉलीप्लेक्स में छँटनी की तैयारी लेकिन प्रतिरोध की कोई पहल नहीं!

बिगुल संवाददाता

खटीमा (ऊधमसिंह नगर)। स्थानीय पॉली प्लैक्स लि. के प्रबन्धन ने विगत 14 जनवरी को बड़े ही नाटकीय ढंग से, फर्जी अनुभव प्रमाण पत्र की आड़ में एक मजदूर ओमनारायण राय को निकाल दिया। इस प्रकार प्रबन्धन ने पास में ही स्थित अपनी 'सिस्टर कन्सर्न' ईस्टर इण्डस्ट्रीज की तर्ज पर कारखाने में छंटनी की प्रक्रिया शुरू कर दी। इस मौके पर भी कारखाने की यूनियन पाली प्लैक्स इम्पलाइज यूनियन लगभग खामोश बैठी हुई है।

दरअसल, ओम नारायण को प्रबन्धन ने तीन वर्ष पूर्व ही निकालने का प्रयास किया था, लेकिन तब वह इस में कामयाब नहीं हो सका था। उस वक्त ओम नारायण ने कुछ प्रबन्धकों पर आपराधिक मुकदमा भी कायम किया था। बाद में प्रबन्धन उसे टूल की तरह इस्तेमाल भी करना चाहता था। इसी क्रम में प्रबन्धन की शह पर उसे यूनियन का पदाधिकारी भी बनाया गया था। (इधर कुछ वर्षों से यूनियन की कार्यकारिणी बनवाने में प्रबन्धन की महत्वपूर्ण भूमिका बनती रही है।) प्रबन्धन उस पर मुकदमा वापस लेने का दबाव भी बना रहा था, लेकिन वह राजी नहीं हुआ और उसने यूनियन से त्यागपत्र भी दे दिया था। इसके बाद प्रबन्धन निष्कासन की कार्रवाई करने में सफल रहा।

इस निष्कासन के बाद पॉली प्लैक्स के प्रबन्धन के हौसले बुलन्द हैं और अब वह छँटनी की दिशा में कदम आगे बढ़ाने लगा है। एक और ताजा घटनाक्रम में एक मज़दूर सूकलाल को अपने फन्दे में लेने का प्रयास उसने तेज कर दिया है।

एक वर्ष पूर्व फैक्ट्री के निशीमोस फिल्म लाइन पर काम करते हुए रोलर में फँसी ट्रिम को निकालने के दौरान सूकलाल का दाहिना हाथ रोलर में चला गया था और उसकी तीन उँगलियां काटनी पड़ी थीं। अब प्रबन्धन उसे निकालने के लिये यह दबाव बना रहा है कि वह लिख कर दे कि उसका पूरा हाथ बेकार है और वह पूरे वेतन के साथ तीन माह की छुट्टी पर चला जाये। उल्लेखनीय है कि आधे हाथ की खराबी की मेडिकल रिपोर्ट के आधार पर ही वह कारखने में पुनः कार्य पर लगा था। रिपार्ट लिखे जाने तक अभी सूकलाल प्रबन्धन के दबाव में नहीं आया है, लेकिन वह मानसिक दबाव में है और परिस्थितियाँ कभी भी विपरीत हो सकती हैं।

उधर ओम नारायण के निष्कासन के बाद यूनियन के ज्यादातर नेता मामले को लम्बा खींचते रहे। इस बीच यूनियन अध्यक्ष सुरेन्द्र सिंह ने मजदूरों की आम सभा के लिए गेट पर एक नोटिस चस्पां किया। इसके तत्काल बाद प्रबन्धन हरकत में आ गया और उसने बाकी यूनियन नेताओं को बुलाकर अलग-अलग मीटिंगें की और अगले ही दिन अध्यक्ष-मंत्री को छोड़कर शेष 8 पदाधिकारियों की ओर से गेट पर ही एक और नोटिस लग गयी, जिसमें प्रस्तावित आम सभा को अध्यक्ष की व्यक्तिगत सभा बताते हुए यूनियन का उससे कोई सम्बन्ध न होने की बात लिखी थी। अन्ततः अध्यक्ष को सभा स्थगित करनी पड़ी और तबसे रिपोर्ट लिखे जाने तक यूनियन द्वारा कोई भी कार्रवाई नहीं हुई, हां मजदूरों में आक्रोश लगातार बना हुआ है।

जाहिरा तौर पर, यह कोई सामान्य घटना नहीं है। प्रबन्धन ने इसके साथ ही मजदूरों पर अपनी जकड़ और मजबूत करने व छंटनी का रास्ता खोलने की शुरुआत कर दी। इसके लिये उसने सबसे पहले यूनियन को अपनी जेबी संस्था बनाने का प्रयास किया और नेतृत्व में रहकर भी विरोध करने की हिमाकत करने वाले इक्का-दुक्का लोगों के मुंह पर पट्टी लगाने में भी कामयाबी हासिल की। वैसे भी यह प्रक्रिया पिछले वेतन समझौते के समय से ही उसने शुरू कर रखी है।

इस कारखाने में यूनियन की कार्यप्रणाली भी कुछ वैसी ही बन चुकी है, जैसी कि आज तमाम यूनियनों की बनी हुई है। यहां, ट्रेड यूनियन जनवाद का तो कोई मायने ही नहीं रह गया है। स्थिति यह है कि अब यहां के आम मजदूर यूनियन के न तो सदस्य बनाये जाते हैं और न ही उनसे सदस्यता शुल्क लिया जाता है। मात्र कागज पर चुनाव होता है और मनमाने तरीके से पदाधिकारी बना लिये जाते हैं, इसमें मजदूरों की तो कोई भी भूमिका नहीं होती है, जबकि प्रबन्धन का सीधा हस्तक्षेप रहता है। ऐसी स्थिति में प्रबन्धन की किसी भी कार्रवाई के खिलाफ यूनियन द्वारा कोई कदम उठाने का प्रश्न ही नहीं उठता है, जबकि मजदूर लगातार घुटन में जीते चले जाते हैं।

लेकिन क्या मजदूरों को ऐसे ही घुट-घुट कर जीते रहना होगा? क्या कोई और रास्ता नहीं है? ओम नारायण के निष्कासन की घटना के बाद मजदूरों को इस पर सोचना ही होगा। यूनियन में मौजूद ईमानदार नेतृत्व के लोगों को भी इस पर सोचना होगा। प्रबन्धन महज अपना उल्लू सीधा करने के लिये कुछ टुकड़े फेंक देता है। यहां के मजदूरों के लिये ईस्टर कारखाने का उदाहरण सामने है जहां प्रबन्धन पिछले दो वर्षों में 94 मजदूरों को निकाल चुका है और यार्न प्लांट के सभी 51 मजदूरों की गर्दन पर छंटनी की तलवार लटकी हुई है।

मजदूरों को निष्कासन की इस कार्रवाई के खिलाफ एकजुटता बनाकर यूनियन नेतृत्व पर संघर्ष के लिये दबाव बनाना चाहिये। इसके साथ ही ट्रेड यूनियन जनवाद की बहाली के लम्बे संघर्ष की शुरुआत करते हुए अपने बीच से नये क्रान्किारी जुझारू नेतृत्व की टीम को आगे लाने का प्रयास भी तेज करना चाहिये। इस दिशा में देर करना और ज्यादा घातक साबित होगा।

ईस्टर इण्डस्ट्रीज ने फिर वीआरएस को बहाना बनाया

परमानेंट के साथ ठेका मज़दूरों पर भी गाज गिरी

बिगुल संवाददाता

खटीमा (ऊधमसिंह नगर)। खटीमा स्थित ईस्टर इण्डस्ट्रीज के प्रबन्धन ने मज़दूरों की छँटनी के क्रम में उस वक्त एक बड़ी सफलता अर्जित की जब उसने 'स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना' के बहाने पिछले 11 महीने से बन्द यार्न प्लाण्ट के 14 मज़दूरों की एक झटके में छुट्टी कर दी। वही दूसरी तरफ, वह 45 ठेका मज़दूरों की छँटनी करने में भी कामयाब रहा।

ईस्टर में सवा दो साल पूर्व मज़दूर आन्दोलन की असफलता के बाद से प्रबन्धन लगातार मज़दूरों पर शिकंजा कसता जा रहा है। इस दौरान विभिन्न तरीके से छँटनी का क्रम चलाते हुए वह 94 नियमित मज़दूरों को बाहर कर चुका है। पिछले वर्ष 1 अप्रैल से उसने कारखाने के यार्न प्लाण्ट को बन्द कर रखा था। इस प्लाण्ट के मज़दूरों पर वह लगातार दबाव बनाता रहा है कि वे हिसाब ले लें। इसी क्रम में एक माह पूर्व उसने प्लाण्ट के सभी 50 मज़दूरों को कैण्टीन में बैठाना शुरू कर दिया था। इधर दो यूनियनों के पाटे के बीच मज़दूर और भी पिसते रहे। दोनों यूनियनों का साझा मोर्चा बनाने का प्रयास भी विफल रहा। कारखाने की एक यूनियन ईस्टर इण्डिया इम्प्लाइज यूनियन के संघर्ष के लिये तैयार होने के बावजूद दूसरी यूनियन ईस्टर इण्डस्ट्रीज मज़दूर संघ का रुख अभी तक स्पष्ट नहीं हो सका।

इसी बीच होती के ऐन पहले प्रबन्धन ने तथाकथित वीआरएस का लुकमा फेंक दिया और दो दिन के भीतर हिसाब लेने वालों को क्रमशः साढ़े तीन लाख, सवा तीन लाख व तीन लाख देने की घोषणा की। कुछ मज़दूरों ने प्रबन्धन के साथ मिलकर इसके लिये प्रयास तेज कर दिया और 14 मज़दूर हिसाब लेकर चले गये। इस घटना के बाद जहां यार्न प्लाण्ट के शेष बचे 36 मज़दूर संघर्ष के लिये और ज्यादा एकजुट हो गये वहीं कारखाने के अन्य मज़दूरों में आशंकाएं और गहरी हो गयीं। उधर, 'ईस्टर इण्डिया इम्प्लाइज यूनियन' ने आम सभा के माध्यम से संघर्ष का ऐलान कर दिया है।

यही नहीं, प्रबन्धन ने इसी दौरान राणा ठेकेदार के मातहत काम करने वाले 45 दैनिक वेतनभोगी मज़दूरों की भी छँटनी कर दी। अब जहां नियमित मज़दूरों की छँटनी पर कहीं कोई संघर्ष नहीं है तो फिर इन ठेका मज़दूरों के लिये भला कौन आवाज़ उठाये?

कारखाने की ऐसी विकट स्थिति में बेहद मानसिक पीड़ा झेलते हुए मज़दूर लगातार यह सोचते रहे हैं कि कब दोनों यूनियनें एक हों और संघर्ष की शुरुआत हो। ऐसे में एक यूनियन द्वारा भी संघर्ष के ऐलान ने मज़दूरों के लिये उत्साह का काम किया है, लेकिन मज़दूरों के भीतर यह संदेह मौजूद है कि क्या एक सही संघर्ष आगे बढ़ पायेगा, और क्या दूसरी यूनियन भी संघर्ष में साथ आयेगी? बार-बार धोखा खाये मज़दूरों को यह भी आशंका है कि कहीं फिर उन्हें कोई धोखा तो नहीं देगा?

मज़दूरों की आशंकाए वाजिब हैं, लेकिन संघर्ष के लिये उन्हें कमर तो कसनी ही होगी। हाँ, मज़दूरों को इसकी तैयारी भी करनी होगी कि जब भी उन्हें धोखा देने का प्रयास हो तो उसका माकूल जवाब दें। इसके लिये सबसे महत्वपूर्ण है कि मज़दूर जाति-धर्म-क्षेत्र व यूनियनों के बँटवारे से बाहर निकल कर अपनी जुझारू एकता कायम करें।

बहरहाल वक्त का तकाजा यही है कि व्यापक मज़दूर हित में यहां की दोनों यूनियनें ईमानदारी से एक साझे मंच पर आकर संघर्ष को आगे बढ़ाएं। अपने संघर्ष को व्यापक रूप देने के लिये उन्हें क्षेत्र की अन्य मज़दूर आबादी और आम जनता को भी जोड़ने का प्रयास करना होगा।

स्थितियां लगातार विकट होती जा रही हैं, इसलिये संघर्ष को आगे बढ़ाना बेहद जरूरी है। यह भी जरूरी है कि संघर्ष की सही दिशा बरकरार रहे।

मजदूरों के 'होलीडे होम' बने साहब लोगों के ऐशगाह

बिगुल संवाददाता

दिल्ली। क्या आपने कभी मजदूरों की ऐशगाहों के बारे में सुना है? ऐसे आरामघर जो सरकार ने मजदूरों के लिए बनवाये हों, क्या इसकी जानकारी है आपको? यदि नहीं तो अपनी जानकारी दुरुस्त कर लें। दिल्ली सरकार मसूरी, शिमला, हरिद्वार, इलाहाबाद जैसी जगहों में मजदूरों के लिए कई वर्षों से 'होलीडे होम' चला रही है। यह और बात है कि न तो मजदूरों को इनके बारे में सरकारें बताती हैं और न रात-दिन कारखानों में खटने वाले मजदूरों की यह स्थिति है कि वे इनमें जाकर आराम कर सकें। ये होलीडे होम मजदूरों के लिए वैसे ही दिखावटी-सजावटी हैं, जैसे हिन्दुस्तान का लोकतंत्र। कहने को लोकतंत्र है, जनता का राज है, आजादी है लेकिन हकीकत यह है कि मुनाफाखोरों की तानाशाही है, लूट का राज है।

धनपशुओं की सेवक सरकारों द्वारा जो गंदे घटिया, अश्लील मजाक किये जाते हैं, ऐसा ही मजदूरों के साथ किया गया मजाक हैं, ये होली डे होम। क्या अन्य सरकारों की तरह दिल्ली सरकार भी यह नहीं जानती कि दिल्ली और उसके इर्दगिर्द लाखों-लाख मजदूर नारकीय जीवन जी रहे हैं। ये मजदूर बारह से अठारह घण्टे तक हाड़तोड़ मेहनत करते हैं लेकिन इन्हें भरपेट भोजन लायक मजदूरी नसीब नहीं। आवास और स्वास्थ्य-शिक्षा की कौन कहे? झुग्गी बस्तियों में रहने के लिए उतनी भी जगह नहीं होती, जितने बड़े नेताओं-नौकरशाहों के शौचालय होते हैं।

दिल्ली सरकार मजदूरों की इतनी ही हितैषी है तो वह मजदूरों के होली डे होम बनवाने से पहले उन्हें 'होम' बनाकर दे दे। जब तक नये मकान नहीं बनवा पाती तब तक खाली पड़े बंगलों, बड़ी-बड़ी कोठियों में इस्तेमाल न हो रहे कमरों को जब्त कर उनमें बेघरों के रहने की व्यवस्था कर दे।

यदि यह सच है कि इस दुनिया में जो कुछ भी पैदा हो रहा है, वह इंसानी श्रम के दम पर है तो निश्चित तौर पर श्रमिकों के जीवन की सभी बुनियादी जरूरतें सरकार को पूरी करनी चाहिए। सबसे बढ़िया चिकित्सालयों और विद्यालयों को मजदूरों और उनके बच्चों को निःशुल्क सेवा देने पर बाध्य किया जाना चाहिए। क्या दिल्ली सरकार ऐसा करेगी?

जब सरकारें मजदूरों-मेहनतकशों के बुनियादी हकों पर डाका डाल रही हों, तब होलीडे होम में रहने के लिये वह मजदूरों को क्यों मौके देंगी। ये होलीडे होम, जो मौके की जगह पर और सुविधायुक्त हैं, नेता-नौकरशाहों और उनके लगुओं-भगुओं की ऐशगाह बने हुए हैं। इन होलीडे होमों की स्थिति वैसी ही है, जैसे श्रम कल्याण केन्द्रों की। श्रम कल्याण केन्द्रों में जो केन्द्र उपयोगी जगह पर थे वे श्रम विभाग के अफसरों के ठाठ-बाट वाले कार्यालय बन गये, बाकी जगह पर चमगादड़ों का राज है।

भूमण्डलीकरण के इस दौर में जब सरकारों का मजदूर विरोधी चेहरा उघड़कर सामने आ चुका हो, ऐसे में उनसे यह उम्मीद करना कि वे मजदूर कल्याणकारी योजनाओं को आगे बढ़ायेंगी, डकैतों से रहम की उम्मीद करने जैसा होगा। चाहे श्रम कल्याण केन्द्र हों या करोड़ों रुपये में खरीदे गये होली डे होम उनमें मजदूरों की मेहनत की कमाई ही लगी है। मजदूरों ने लड़कर ही ऐसी योजनाएं सरकारों से लागू करवाई थीं।

यदि आज इन जगहों से मजदूरों को बेदखल कर दिया गया है तो एक बार फिर इन जगहों को आबाद करने के लिए संगठित होकर लड़ने के अलावा और कोई रास्ता नहीं हो सकता।

बच्चों के सूखे चेहरे उनकी लाल हंसी, हम याद रखेंगे पार उसे कर जायेंगे

अभी हाल ही में संयुक्त राष्ट्र संघ की संस्था यूनिसेफ (जो बच्चों के कल्याण के लिये काम करने का पाखण्ड रचती है) ने 46 विकासशील कहे जाने वाले देशों के गरीब परिवारों के बच्चों पर होने वाले अपमानजनक व्यवहारों का एक सर्वक्षण जारी किया। कई प्रमुख अखबारों में भी यह प्रकाशित हुआ था। सर्वेक्षण में यह बताया गया कि पूरी दुनिया में एक अरब बच्चों को भरपेट भोजन और पानी नहीं मिलता। यूनिसेफ की यह रिपोर्ट गरीब बच्चों की जिन्दगी की कोई ऐसी तस्वीर नहीं पेश करती जिसे एक आम आदमी अपनी और सामाजिक जिन्दगी के तजुर्बे से न जानता हो। हाँ, यह ज़रूर है कि वह अपने तजुर्बे को आँकड़ों के बजाय अहसास की नज़र से देखता है।

आये दिन हमें गरीब परिवरों और उनमें पल-बढ़ रहे बच्चों की दारुण जिन्दगी की तस्वीरें अखबारों की सुर्खियों में दिखायी दे जाती हैं। औद्योगिक महानगरों की मजदूर बस्तियों में, झुग्गी-झोपड़ियों में किस तरह सीलन भरे बदबूदार कमरों में पूरा परिवार गुजारा करता है, इसे जानने के लिये आँकड़ों के सहारे की कोई जरूरत नहीं। इन दड़बेनुमा कमरों में 7-8 सदस्यों का परिवार गुजारा करता है। इनमें बच्चे भी शामिल हैं। साँस लेने के लिये न तो साफ हवा और न पीने के लिये साफ पानी। सर्वेक्षण में इसी सचाई को आँकड़ों में ढालते हुए बताया गया है कि पूरी दुनिया में 20 प्रतिशत बच्चों को आज भी पीने का साफ पानी नहीं मिलता। यहाँ तक कि दूषित जल हासिल करने के लिये भी 10-10 मिनट तक पैदल चलना पड़ता है।

सर्वेक्षण में इसी तरह गरीब परिवारों के करोड़ों बच्चों की अन्धेरी ज़िन्दगी पर आँकड़ों के जरिये रोशनी डाली गयी है। सर्वेक्षण के मुताबिक दक्षिण एशिया में 9 करोड़ बच्चे प्रतिदिन भूखे रहते हैं और 13 करोड़ 40 लाख बच्चों ने कभी स्कूल नहीं देखा। इन आँकड़ों से तीसरी दुनिया के देशों के गरीब बच्चों की जिन्दगी की सचाई की गवाही देने के बाद 'यूनिसेफ' इन देशों की सरकारों से आग्रह करती है कि बच्चों के अच्छे भविष्य के निर्माण में वे सहयोग करें।

बच्चों के बारे में घड़ियाली आँसू बहाने का यूनिसेफ का पाखण्ड उसके इस आग्रह से ही जाहिर है। इन देशों के शासक, जो मुनाफा और बाजार पर टिकी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के संचालक हैं, क्या इतने मासूम हैं कि यूनिसेफ के इस भोले आग्रह पर बच्चों के प्रति संवेदनशील हो जायेंगे। और मान लीजिये किसी दैवी कृपा से ऐसा हो भी जाये, तो भी क्या होगा? सवाल हुक्मरानों की संवेदनहीनता का नहीं उस व्यवस्था की संवेदनहीनता का है जिसमें कोई बेहद संवेदनशील मानवतावादी व्यक्ति भी संवेदनहीन बन जायेगा। मुनाफे और बाजार की व्यवस्था का अपना तर्क होता है। इसमें मानवीय संवेदनशीलता के लिये कोई स्थान नहीं है। ऐसा भी नहीं कि यूनिसेफ के कर्ता-धर्ता भी मासूम लोग हैं जो इस सीधी-सादी सचाई को नहीं समझ पाते। बात दरअसल यह है कि यूनिसेफ के कर्ता-धर्ता बच्चों के प्रति संवेदनशीलता का पाखण्ड रचकर मानवद्रोही पूँजीवाद-साम्राज्यवाद के वीभत्स-कुरूप चेहरे को चमकाने की कवायद करते रहते हैं क्योंकि इनका असली धन्धा यही है। लेकिन यह पाखण्ड इतनी कुशलता से होता है कि बहुत से मध्यवर्गीय भले मानस इसके समझ नहीं पाते।

दुनिया भर में पिछले एक दशक से भूमण्डलीकरण की नीतियों से मेहनतकशों की जो तबाही-बर्बादी हो रही है उसके असर से उनके बच्चे भला कैसे अछूते रहे सकते हैं। ऐसे में बच्चों को बचाने के इस अन्तरराष्ट्रीय पाखण्ड की जरूरत भी बहुत ज्यादा बढ़ गयी है। कहीं 'बचपन बचाओ आन्दोलन' का शोर है, तो कहीं बच्चों को शिक्षा का अधिकार दिलाने की ढकोसलेबाजी हो रही है।

पिछले नवम्बर माह में नयी दिल्ली में शिक्षा के अधिकार के सवाल को केन्द्र में रखकर कुछ ढकोसलेबाजों ने एक अश्लील तमाशा किया। ग्यारह राज्यों से सैकड़ों बच्चों को बुलाकर एक बाल संसद आयोजित की गयी। इसमें इन बच्चों की मीठी जुबान से सांसदों की गन्दी भाषा बुलवायी गयी। कुछ बच्चों को नेता बनाया गया और अन्य बच्चों को जनता बनाकर जनता की माँगों के बारे में सवाल-जवाब का सत्र दिखाया गया। दर्शकों में कई राष्ट्रों के अध्यक्ष, शिक्षामंत्री, यूनिसेफ के नुमाइन्दे और एनजीओ वाले थे। दर्शक बने ये बहुरूपिये बच्चों की जुबान से अपनी सिखायी-रटायी गयी बातें सुनकर मस्त हो गये। संसदीय सुअरबाड़े की इस नाटकीय प्रस्तुति में शामिल बच्चों को तालियां बजाने वाले इन मस्त दर्शकों की असलियत भला क्या मालूम। अगर मालूम होती, तो वे इस गन्दे-घिनौने तमाशे में शामिल ही क्यों होते। बहरहाल, बाल संसद में मौजूद यूनेस्को के महासचिव ने इस मौके पर अपने कीमती उद्गार व्यक्त करते हुए कहा कि 'जनता' की यह माँगें जायज हैं और इन्हें वे उच्चस्तरीय विश्व बैठकों तक ले जायेंगे। इन उच्चस्तरीय विश्व बैठकों में क्या होगा, कौन नहीं जानता। कोरस में बच्चों की दुरवस्था पर छाती पीटी जायेगी, घड़ियाली आँसू बहाये जायेंगे और बचपन बचाने के नाम पर एनजीओ वालों को मोटी रकमें हासिल हो जायेंगी।

राजधानी दिल्ली में पिछले दिनों इसी तरह का एक और तमाशा हुआ। यूनेस्को के सहयोग से 'सबको शिक्षा' मुहैया कराने के नाम पर एनजीओ के नुमाइन्दों और सरकारी प्रतिनिधियों की एक मीटिंग हुई। यूनेस्को ने इस अवसर पर एक रिपोर्ट जारी की। इसमें 53 गरीब देशों में प्राथमिक शिक्षा की बुरी हालत का जिक्र है। मीटिंग में मानव संसाधन मंत्री यूनेस्को की इस रिपोर्ट पर भड़क गये। कारण यह था कि मंत्री जी को लगा कि रिपोर्ट में प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में भारत सरकार की उपलब्धियों को कम करके आँका गया है। उन्होंने तमाम कागजी उपलब्धियों का ब्योरा पेश करते हुए कहा कि प्राथमिक शिक्षा को मुहैय्या कराने और बाल मजदूरी रोकने की दिशा में सरकार ने उल्लेखनीय सफलता हासिल की है जिसकी रिपोर्ट में अनदेखी की गयी है। इस मीटिंग में हुई तमाम पाखण्डपूर्ण बकवासों का नतीजा सिर्फ यही हुआ कि सरकार सर्वशिक्षा के नाम पर ढपोरशंखी राग और जोर से अलापने लगी और एनजीओ वाले अपनी-अपनी थैलियों के पीछे भागे फिर रहे हैं।

वैसे तो सबको शिक्षा उपलब्ध कराने के नाम पर सरकारी ढपोरशंखी राग पिछली आधी सदी से देश की सरकारें अलाप रही हैं पर पिछले एक दशक से यूनिसेफ, यूनेस्को जैसी साम्राज्यवाद पोषक संस्थाओं और साम्राज्यवादी दानदाताओं की जुगलबन्दी से एनजीओ वाले और देश की सरकार ज्यादा जोर-शोर से पाखण्डी राग अलाप रही है। इन तमाशों और कवायदों से न तो सबको शिक्षा का लक्ष्य हासिल किया जा सकता है और न ही बचपन बचाया जा सकता है। इसका कारण समझना एक आम मेहनतकश के लिये कठिन नहीं। यह बाजार और मुनाफे की व्यवस्था और समूची पूँजीवादी सभ्यता आम मेहनतकशों और उनके बच्चों के भविष्य की तबाही की बुनियाद पर टिकी है। अगर बचपन बचाना है तो इस व्यवस्था को ही तबाह करना होगा। धीरे-धीरे जिन्दगी के हालात आम मेहनतकशों को यह खुद समझाते जा रहे हैं।

वह मन ही मन वीरेन डंगवाल की कविता में व्यक्त यह संकल्प भी लेता जा रहा है-

बच्चों के सूखे चेहरे उनकी लाल हंसी
हम याद रखेंगे पार उसे कर जायेंगे
आयेंगे उजले दिन जरूर आयेंगे।

-विजय

भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव के शहादत दिवस (23 मार्च, 1931) के अवसर पर

हिन्दुस्तानी इन्कलाब के सबसे बड़े प्रतीक शहीदेआजम भगतसिंह की फांसी के बाद 73 वर्ष और उस आजादी के बाद 57 वर्ष का समय बीत चुका है, जो हमें कांग्रेस के नेतृत्व में मिली।

भगतसिंह ने बार-बार यह चेतावनी दी थी कि कांग्रेस के रास्ते पर चलकर मिलने वाली आजादी 10 फीसदी ऊपर के लोगों की आजादी होगी, पूंजीपतियों-साहूकारों की आजादी होगी; देश के 90 फीसदी मजदूरों-किसानों की जिन्दगी को शोषण और लूट से आजादी नहीं मिलेगी। इन 57 वर्षों के एक-एक दिन ने उस नौजवान की चेतावनी को सच साबित किया है। लुटेरों की चमड़ी का रंग बदल गया है, पर लूट बन्द होना तो दूर और तेज होती गयी है।

आधी सदी से कुछ अधिक के भीतर देशी पूंजीवादी सत्ता की गोलियों ने उससे अधिक जनता का खून बहाया है, जितना दो सौ वर्षों के दौरान अंग्रेजों ने बहाया था। कहने को जनतंत्र है, पर अन्यायी सत्ता के विरुद्ध उठने वाली हर आवाज को, हर आन्दोलन को कुचल देने के लिए न तो नये-नये काले कानूनों की कमी है, न जेलों, पुलिस और फौज की। प्रतिदिन देश के किसी न किसी कोने में छात्रों, मजदूरों या किसानों पर गोलियां चल रही हैं।

देश विदेशी कर्ज से लदा है। एक ब्रिटिश साम्राज्यवाद की जगह दर्जनों विदेशी डाकू देशी धन्नासेठों के साथ मिलकर भारत की जनता की मेहनत को और हमारी इस सर्वगुणसम्पन्न धरती को लूट रहे हैं। ऊपर के करीब सौ बड़े पूंजीपति घरानों की पूंजी में दोगुने-चौगुने की नहीं बल्कि दो सौ गुने से लेकर चार सौ गुने तक की बढ़ोत्तरी हुई है जबकि दूसरी ओर आधी आबादी को शिक्षा और दवा-इलाज तो दूर, भरपेट भोजन भी मयस्सर नहीं है। 1947 में देश को जो अधूरी और विकलांग आजादी मिली, उसका पूरा फायदा सिर्फ ऊपर की बीस फीसदी धनिक आबादी को ही मिला है जो पूंजीपतियों की चाकरी बजाती है और साम्राज्यवादियों के तलवे चाटने के लिए तैयार है।

देश के मेहनतकशों और नौजवानों ने बहुत इन्तजार कर लिया। बहुत दिनों तक घुट-घुटकर जी लिया। इस या उस चुनावबाज पार्टी से बदलाव की उम्मीदें पालकर बहुत धोखा खा लिया। अब उन्हें सोचना ही होगा कि अब और कितना छले जायेंगे? अब और कितना बर्दाश्त करेंगे? दुनियादारी के भंवरजाल में कब तक फंसे रहेंगे? कितने दिन तक चुनौतियों से आंखें चुरायेंगे? उन्हें भगतसिंह के सन्देश को सुनना होगा! नई क्रान्ति की राह पर चलने के लिए वक्त आवाज दे रहा है। उसे सुनना होगा!

क्रान्ति से हमारा अभिप्राय है-अन्याय पर आधारित मौजूदा समाज-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन।

समाज का प्रमुख अंग होते हुए भी आज मजदूरों को उनके प्राथमिक अधिकार से वंचित रखा जा रहा है और उनकी गाढ़ी कमाई का सारा धन शोषक पूंजीपति हड़प जाते हैं। दूसरों के अन्नदाता किसान आज अपने परिवार सहित दाने-दाने के लिए मुहताज हैं। दुनिया भर के बाजारों को कपड़ा मुहैया करने वाला बुनकर अपने तथा अपने बच्चों के तन ढंकने-भर को भी कपड़ा नहीं पा रहा है। सुन्दर महलों का निर्माण करने वाले राजगीर, लोहार तथा बढ़ई स्वयं गन्दे बाड़ों में रहकर ही अपनी जीवन-लीला समाप्त कर जाते हैं। इसके विपरीत समाज के जोंक शोषक पूंजीपति जरा-जरा-सी बातों के लिए लाखों का वारा-न्यारा कर देते हैं।

यह भयानक असमानता और जबर्दस्ती लादा गया भेदभाव दुनिया को एक बहुत बड़ी उथल-पुथल की ओर लिए जा रहा है। यह स्थिति अधिक दिनों तक कायम नहीं रह सकती। स्पष्ट है कि आज का धनिक समाज एक भयानक ज्वालामुखी के मुख पर बैठकर रंगरेलियां मना रहा है और शोषकों के मासूम बच्चे तथा करोड़ों शोषित लोग एक भयानक खड्ड की कगार पर चल रहे हैं।

- बम काण्ड पर सेशन कोर्ट में बयान

क्रान्ति के इस आदर्श की पूर्ति के लिए एक भयंकर युद्ध का छिड़ना अनिवार्य है। सभी बाधाओं को रौंदकर आगे बढ़ते हुए उस युद्ध के फलस्वरूप सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतंत्र की स्थापना होगी। यह अधिनायकतन्त्र क्रान्ति के आदर्शों की पूर्ति के लिए मार्ग प्रशस्त करेगा। क्रान्ति मानवजाति का जन्मजात अधिकार है जिसका अपहरण नहीं किया जा सकता। स्वतन्त्रता प्रत्येक मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। श्रमिक वर्ग ही समाज का वास्तविक पोषक है, जनता की सर्वोपरि सत्ता की स्थापना श्रमिक वर्ग का अन्तिम लक्ष्य है। इन आदर्शों के लिए और इस विश्वास के लिए हमें जो भी दण्ड दिया जायेगा, हम उसका सहर्ष स्वागत करेंगे। क्रान्ति की इस पूजा-वेदी पर हम अपना यौवन नैवेद्य के रूप में लाये हैं, क्योंकि ऐसे महान आदर्श के लिए बड़े से बड़ा त्याग भी कम है। हम सन्तुष्ट हैं और क्रान्ति के आगमन की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे हैं। इन्कलाब जिन्दाबाद!

- बम काण्ड पर सेशन कोर्ट में बयान

क्रान्तिकारियों का विश्वास है कि देश को क्रान्ति से ही स्वतंत्रता मिलेगी। वे जिस क्रान्ति के लिए प्रयत्नशील हैं और जिस क्रान्ति का रूप उनके सामने स्पष्ट है उसका अर्थ केवल यह नहीं है कि विदेशी शासकों व उनके पिट्ठुओं से क्रान्तिकारियों का सशस्त्र संघर्ष हो, बल्कि इस सशस्त्र संघर्ष के साथ-साथ नवीन सामाजिक व्यवस्था के द्वार देश के लिए मुक्त हो जायें। क्रान्ति पूंजीवाद, वर्गवाद तथा कुछ लोगों को ही विशेषाधिकार दिलाने वाली प्रणाली का अन्त कर देगी। यह राष्ट्र को अपने पैरों पर खड़ा करेगी, उससे नवीन राष्ट्र और नये समाज का जन्म होगा। क्रान्ति से सबसे बड़ी बात तो यह होगी कि वह मजदूर तथा किसानों का राज्य कायम कर उन सब सामाजिक अवांछित तत्वों को समाप्त कर देगी जो देश की राजनैतिक शक्ति को हथियाये बैठे हैं।

- बम का दर्शन

विशेष सामग्री

(छत्तीसवीं किस्त)

पार्टी की बुनियादी समझदारी

अध्याय -12

पार्टी सदस्यों की अनुकरणीय अगुआ भूमिका

एक क्रान्तिकारी पार्टी के बिना मजदूर वर्ग क्रान्ति को कतई अंजाम नहीं दे सकता। लेनिन ने इस बात को बार-बार जोर देकर कहा था। स्तालिन और माओ ने भी बराबर इस बात पर जोर दिया और बीसवीं सदी की सभी सफल सर्वहारा क्रान्तियों ने भी इसे सच साबित किया।

लेनिन ने सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के सांगठनिक उसूलों का निर्धारण किया और इसी फौलादी सांचे में बोल्शेविक पार्टी को ढाला। चीन की पार्टी भी बोल्शेविक पार्टी की ही उत्तराधिकारी थी। सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान, समाजवादी समाज में वर्ग-संघर्ष का संचालन करते हुए माओ के नेतृत्व में चीन की पार्टी ने अन्य युगान्तरकारी सैद्धान्तिक उपलब्धियों के साथ-साथ लेनिनवादी सांगठनिक सिद्धान्तों को भी और आगे विकसित किया।

सोवियत संघ और चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के लिए बुर्जुआ तत्वों ने सबसे पहले यही जरूरी समझा कि सर्वहारा वर्ग की पार्टी का चरित्रा बदल दिया जाये। हमारे देश में भी क्रान्ति का रास्ता छोड़ संसदीय रास्ते पर चलने वाली नामधारी कम्युनिस्ट पार्टियां मौजूद हैं। भारतीय मजदूर क्रान्ति को सफल बनाने के लिए भारत में भी सर्वहारा वर्ग की एक सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी खड़ी करने का काम सबसे ऊपर है।

इसके लिए बेहद जरूरी है कि मजदूर वर्ग यह जाने कि असली और नकली कम्युनिस्ट पार्टी में क्या फर्क होता है और एक क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी कैसे खड़ी की जानी चाहिए।

इसी उद्देश्य से, फरवरी 2001 के अंक से हमने एक बेहद जरूरी किताब 'पार्टी की बुनियादी समझदारी' के अध्यायों का किस्तों में प्रकाशन शुरू किया है। यह किताब सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान पार्टी-कतारों और युवा पीढ़ी को शिक्षित करने के लिए तैयार की गई श्रृंखला की एक कड़ी थी। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की दसवीं कांग्रेस (1973) में पार्टी के गतिशील क्रान्तिकारी चरित्र को बनाये रखने के प्रश्न पर अहम सैद्धान्तिक चर्चा हुई थी, पार्टी का नया संविधान पारित किया गया था और संविधान पर एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी। इसी नई रोशनी में यह पुस्तक एक सम्पादकमण्डल द्वारा तैयार की गई थी। मार्च, 1974 में पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, शंघाई से इस पुस्तक के प्रथम संस्करण की 4,75,000 प्रतियां छपीं। यह पुस्तक पहले चीनी भाषा से फ्रांसीसी भाषा में अनूदित हुई और 1976 में प्रकाशित हुई। फिर नार्मन बेथून इंस्टीट्यूट, टोरण्टो (कनाडा) ने इसका फ्रांसीसी से अंग्रेजी में अनुवाद कराया और 1976 में ही इसे प्रकाशित कर दिया। प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद मूल पुस्तक के इसी अंग्रेजी संस्करण से किया गया है। -सम्पादक

एक अनुकरणीय अगुआ भूमिका निभाने के लिए हमें "पांच शर्तों" को जरूर पूरा करना चाहिये

जनसमुदायों के बीच अपनी क्षमता का अधिकतम उपयोग करते हुए अपनी अनुकरणीय अगुआ भूमिका निभाने के लिए, कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों को उच्च स्तर कायम रखना चाहिये और कठिन शर्तों को पूरा करना चाहिये। वे जहां भी जायें और जो भी करें, उसमें उन्हें अपने साथ सख्ती बरतनी चाहिये और उन पांच शर्तों को सख्ती से पूरा करते हुए, जिन्हें सर्वहारा वर्ग के उन्नत तत्व अवश्य पूरा करते हैं, अपने आपको आगे बढ़ने को प्रेरित करते रहना चाहिये।

सर्वहारा वर्ग के उन्नत तत्वों का पैमाना पार्टी-संविधान में बताई गई पांच शर्तें हैं। वे सचेतन तौर पर मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से तुड. विचारधारा का अध्ययन करने के लिए कम्युनिस्टों का आह्वान करती हैं; चीन और पूरी दुनिया की विशाल बहुसंख्यक आबादी की सेवा करने का आह्वान करती हैं; उस विशाल बहुसंख्या से जुड़ने में कुशल होने का आह्वान करती हैं जिनमें वे लोग भी शामिल हैं जिन्होंने उनका गलत तरीके से विरोध किया लेकिन जो ईमानदारी से अपनी गलतियों को सही कर रहे हैं, लेकिन उसी वक्त कैरियरवादियों, षड्यंत्रकारियों और दुरंगी चाल चलने वालों पर खास तौर पर निगाह रखने को भी कहती हैं ताकि ऐसे गलत तत्वों को किसी भी स्तर पर पार्टी या राज्य का नेतृत्व हथियाने से रोका जा सके कि पार्टी और राज्य का नेतृत्व हमेशा मार्क्सवादी क्रान्तिकारियों के हाथ में बन रहे; ये शर्तें समस्याएं खड़ी होने पर जनसमुदायों से सलाह-मशविरा करने का भी आह्वान करती हैं; आलोचना-आत्मालोचना में बेलाग-लपेट होने का आह्वान करती हैं।

इन पांच बिन्दुओं को कम्युनिस्टों को अवश्य लागू करना चाहिये, यह बात अंतरराष्ट्रीय पैमाने पर सर्वहारा अधिनायकत्व के ऐतिहासिक अनुभव का समाहार करने के बाद, और इसके सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं पर विचार करने के बाद हमारे महान नेता अध्यक्ष माओ ने रखीं। ये महत्वपूर्ण रणनीतिक कदम हैं जिनका लक्ष्य संशोधनवाद को रोकना और इस बात की गारण्टी करना है कि हमारी पार्टी और राज्य कभी अपना रंग नहीं बदलेंगे। ये सर्वहारा पार्टी-भावना की सघन अभिव्यक्ति को स्थापित करते हैं और हर कम्युनिस्ट की गतिविधियों का मार्गदर्शक हैं।

ये पांच बिंदु उस राजनीतिक दिशा का उल्लेख करते हैं जिसे कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों को बनाये रखना चाहिये। एक कम्युनिस्ट के लिये बुनियादी सवाल राजनीतिक दिशा का, और मार्गदर्शक सिद्धान्त का होता हे, जिसका मतलब है कि हमें **"मार्क्सवाद को लागू करना चाहिये, संशोधनवाद को नहीं।"** (माओ त्से तुड., चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की दसवीं राष्ट्रीय कांग्रेस (दस्तावेज) से उद्धृत, पृ-18, अंग्रेजी संस्करण)। इस निर्देश का पालन करने के लिये, कम्युनिस्टों को सचेतन तौर पर मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से तुड. विचारधारा का अध्ययन करना चाहिये और बेबाक तरीके से संशोधनवाद का खण्डन करना चाहिये। उन्हें समस्याओं पर विचार करने और उनका हल करने के लिये द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद को लागू करना सीखना चाहिये और वस्तुगत दुनिया को बदलने की प्रक्रिया में अपने आत्मगत चिंतन को बदलने के लिए कठिन संघर्ष करना चाहिये। केवल इसी तरीके से, तीखे और जटिल संघर्षों के जरिये ही, वे उन संशोधनवादी तत्वों को चालाकी से ढूंढ निकालने की क्षमता को विकसित कर सकते हैं, जो क्रान्ति का समर्थन करने का दिखावा करते हुए व्यवहार में उसका विरोध कर रहे हैं। केवल इसी तरीके से सभी गलत लाइनों और प्रवृत्तियों का बेबाकी से विरोध करने के, अध्यक्ष माओ की क्रान्तिकारी लाइन को थामे रहने के, शब्दों में या कामों में, कभी भी मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से तुड. विचारधारा द्वारा दिखायी गई राह से न भटकने के, और हमेशा एक दृढ़ और सही राजनीतिक दिशा कायम रखने के काबिल बना सकते हैं।

ये पांच बातें उस अंतिम लक्ष्य को भी दिखलाती हैं जिसके लिये कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों को संघर्ष करना चाहिये। अध्यक्ष माओ कहते हैं: **"हमें जनता के विशाल बहुमत के हितों के लिये, चीन की जनता के विशाल बहुमत और विश्व की जनता के विशाल बहुमत के हितों के लिये काम करना चाहिये; हमें मुट्ठी भर लोगों के लिये, शोषणकारी वर्गों के लिये, बुर्जुआ वर्ग के लिये, या जमींदारों, धनी किसानों, प्रतिक्रान्तिकारियों, खराब तत्वों या दक्षिणपंथियों के लिये काम नहीं करना चाहिये।"** हम अपने लिये पार्टी गठित करते हैं या सामान्य हितों के लिये? यही वह रेखा है जो कम्युनिस्ट पार्टी और बुर्जुआ पार्टी के बीच भेद करती है और यही वह कसौटी है जो हमें सच्चे कम्युनिस्टों और नकली कम्युनिस्टों के बीच भेद करने के काबिल बनाती है। अगर कोई कम्युनिस्ट पूरे दिल से जनता की सेवा नहीं करता, बल्कि किसी छोटे-से समूह की सेवा करता है या अपनी प्रतिष्ठा और व्यक्तिगत लाभ को बढ़ाने के लिये काम करता है, तो उसने सर्वहारा पार्टी भावना को त्याग दिया है और अब उसे कम्युनिस्ट नहीं माना जा सकता। ल्यू शाओ ची और लिन प्याओ के प्रतिक्रान्तिकारी संशोधनवादी गिरोह कैरियरवादियों, षड्यंत्रकारियों और दुरंगी चाल चलने वाले व्यक्तियों से बने थे जो एकनिष्ठ रूप से एक छोटी अल्पसंख्या, बुर्जुआ वर्ग के हितों की सेवा करने को समर्पित थे और उन्हें एक के बाद एक इतिहास के कूड़ेदान में जनता द्वारा फेंक दिया गया। हमें शोषणकारी वर्गों के बुर्जुआ विचारों और विचारधारा द्वारा होने वाले क्षरण का पूरी तरह प्रतिरोध करना चाहिये और जनता की पूरी तरह से, पूरे दिल से सेवा करने की कम्युनिस्ट भावना से ओत-प्रोत हो जाना चाहिये।

ये पांच बातें वह सही लाइन परिभाषित करती हैं जिसमें कम्युनिस्ट पार्टी के सभी सदस्यों को उद्यमशील होना चाहिये। कम्युनिस्टों को अध्यक्ष माओ की क्रान्तिकारी लाइन को मानना चाहिये, दृढ़ता से वर्ग संघर्ष और दो लाइनों के संघर्ष को चलाना चाहिये और हमेशा चौकन्ना रहना चाहिये ताकि कैरियरवादियों और षड्यंत्रकारियों को पार्टी या राज्य का नेतृत्व हड़पने से रोका जा सके। कम्युनिस्टों को हमेशा एकता के लिये काम करना चाहिये और फूट डालने का विरोध करना चाहिये और अपने इर्द-गिर्द जनता की विशाल बहुसंख्या को एकजुट करना चाहिये ताकि मुट्ठी भर वर्ग शत्रुओं को अधिकतम अलग-थलग किया जा सके और उन पर हमला किया जा सके।

अंत में, ये पांच बिंदु उस पद्धति और शैली को अभिव्यक्त करते हैं जिसे कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों को जरूर अपनाना चाहिये। इसके लिए जरूरत है कि हम कम्युनिस्ट तथ्यों से सत्य को निकालने और जनदिशा लागू करने की शानदार कार्यशैली को लागू करें, विनम्रता, ईमानदारी और कठिन संघर्ष की गौरवशाली परम्परा को कायम रखें और बेबाक तरीके से आलोचना और आत्मालोचनवा को लागू करें। कम्युनिस्ट सर्वहारा वर्ग के उन्नत तत्व होते हैं, न कि अपवादस्वरूप अच्छे व्यक्ति जो जनता के ऊपर हों। गैर-पार्टी जनसमुदायों से खुद को अलग करते हुए भी, एक कम्युनिस्ट को उनके द्वारा एक साधारण मजदूर का बुनियादी रुख रखने वाले के तौर पर देखा जाना चाहिये। केवल तभी वह जनसमुदायों को उनके संघर्षों में मार्गदर्शन देने और एक अगुआ भूमिका निभाने के, जैसा कि कम्युनिस्टों को होना चाहिये, काबिल होगा।

बुनियादी तौर पर, कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों की अनुकरणीय अगुआ भूमिका अध्यक्ष माओ की क्रान्तिकारी लाइन के अचूक कार्यान्वयन में, दो वर्गों, दो रास्तों और दो लाइनों, व्यापक क्रान्तिकारी जनसमुदायों के उनके नेतृत्व और वर्ग शत्रु के बीच संघर्ष में हमेशा अगली कतारों में रहने के उनके व्यवहार में, और सर्वहारा वर्ग के ऐतिहासिक मिशन को पूरा करने में उनके अबाध समर्पण में अभिव्यक्त होती है। इसलिये कोई कम्युनिस्ट उन्नत है या नहीं यह तय करने की कसौटी दिशा को लेकर उसकी चेतना का स्तर है। हर कम्युनिस्ट को लाइन पर करीबी तौर पर गौर करना चाहिये, लगातार पार्टी की बुनियादी लाइन दिमाग में रखनी चाहिये और लगातार वर्ग संघर्ष और दो लाइनों के संघर्ष की अपनी चेतना का स्तरोन्नयन करते रहना चाहिये, ताकि वह पूरी तरह से और हर मोर्चे पर सर्वहारा के उन्नत तत्व की अपनी भूमिका को निभा सके।

(अगले अंक में जारी)

डब्ल्यू.एस.एफ. : साम्राज्यवाद का नया 'ट्रोजन हॉर्स'

साम्राज्यवाद के एक 'सेफ्टी वाल्व' और 'ट्रोजन हॉर्स' के रूप में काम करने वाले विश्व सामाजिक मंच (डब्ल्यू.एस.एफ.) के चरित्र, संरचना और वर्ग सहयोगवादी राजनीति का भण्डाफोड़ करने वाली एक विचारोत्तेजक पुस्तक। भारत तथा कई देशों के क्रान्तिकारी संगठनों और प्रगतिशील बुद्धिजीवियों के आलेखों का संकलन।

पृष्ठ : 208 मूल्य : 50 रुपये

प्रतियों के लिए जनचेतना के केन्द्रों से संपर्क करें

संसदीय बैठकखाने की बदबू...

(पेज 1 से आगे)

भोंपू बने हुए हैं। लेकिन कांग्रेस की मुसीबत यह है कि उसके पास न तो कोई मुद्दा है और न ही कोई करिश्माई नेता। घूम-फिरकर एक बार फिर वह नेहरू परिवार की विरासत भुनाकर सत्ता में वापसी के लिये जी तोड़ कोशिश कर रही है।

सोनिया गाँधी का रोड शो कोई खास हलचल नहीं पैदा कर सका। हालाँकि, सुप्रीम कोर्ट द्वारा राजीव गाँधी को बोफोर्स दलाली वाले मामले से बरी करने को सोनिया गाँधी ने खूब भुनाने की कोशिश की लेकिन वह भी टाँय-टाँय फिस्स हो गया। अब कांग्रेस पार्टी सत्ता में वापसी के लिये प्रियंका गाँधी के करिश्मे और चुनावी गंठजोड़ों की सफलता पर आस लगाये हुए है। भाजपा के 'भारत उदय' अभियान की पोल खोलने के लिये कांग्रेस ने जो आरोप पत्र जारी किया वह आम मतदाताओं को लुभाने में बुरी तरह नाकामयाब रहा। आम मेहनतकश अवाम को बरगलाने के लिये आरोपपत्र में भाजपा के पिछले पाँच सालों के दौरान हुए घपलों-घोटालों और जनविरोधी नीतियों के हवाले देते हुए कांग्रेस ने अपने चालीस साल के कुशासन और एक से बढ़कर एक घपलों-घोटालों पर पर्दा डालने की कोशिश की है यह भी फुसफुसा पटाखा साबित हो रहा है।

अब तक मुख्यतः अकेले अपने बूते चुनाव लड़ती आ रही कांग्रेस भी चुनावी गँठजोड़ कायम करने के लिये कोई कोर-कसर बाकी नहीं छोड़ रही है। दरअसल, गँठजोड़ की राजनीति का सहारा लेना उसकी मजबूरी बन गयी है। गँठजोड़ कायम करने के लिये कांग्रेस जिस धर्मनिरपेक्षता की दुहाई दे रही है उसके प्रति भी न तो उसकी कोई ईमानदार प्रतिबद्धता रही है और न ही उन पार्टियों की जो कांग्रेस के साथ गँठजोड़ कायम कर रही हैं। यह बात अब किसी से छुपी नहीं रह गयी है कि चुनाव जीतने के लिये समय-समय पर हल्की केसरिया लाइन पर चलने में उसे कोई गुरेज नहीं है। अभी बीते विधानसभा चुनावों में ही मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ और राजस्थान में कांग्रेस ने हल्की केसरिया लाइन का सहारा लिया था। पीछे का इतिहास भी हमें नहीं भूलना चाहिये। अस्सी के दशक में पंजाब में अकाली दल के बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिये जरनैल सिंह भिण्डरांवाला को इन्दिरा गाँधी ने ही खड़ा किया था। यह अलग बात है कि आगे चलकर भिण्डरांवाला खुद इन्दिरा गाँधी के लिये ही भस्मासुर बन बैठा। राजीव गाँधी द्वारा अयोध्या में शिलान्यास कराना और बाबरी मस्जिद विध्वंस में नरसिंह राव की संदिग्ध भूमिका से भी आँखे फेरने की जरूरत नहीं है। इन सबके बावजूद कांग्रेस अगर धर्मनिरपेक्ष होने का दावा करती है, तो यह उसकी राजनीतिक अवसरवादिता के अलावा और कुछ नहीं है।

जो दल कांग्रेस से चुनावी गँठजोड़ कायम कर धर्मनिरपेक्षता के उसके दावे को जायज ठहरा रहे हैं, खुद उनकी धर्मनिरपेक्षता की चीरफाड़ की जानी चाहिये। लालू प्रसाद एक समय कांग्रेस को भाजपा की जुड़वां बहन कह चुके हैं, फिर आज वह धर्मनिरपेक्ष कैसे हो गयी। तमिलनाडु में करुणानिधि आज धर्मनिरपेक्षता के नाम पर कांग्रेस का दामन थाम रहे हैं। लेकिन अभी चन्द महीने ही गुजरे हैं जब वे भाजपा की अगुवाई वाली राजग सरकार को समर्थन दे रहे थे। कहने की जरूरत नहीं कि ये सब चुनावी पैंतरेबाजियां हैं। वैसे भी अधिकांश क्षेत्रीय पूँजीवादी पार्टियों का यही चरित्र है कि वे अपने उसूल क्षेत्रीय राजनीति में अपने नफ़ा-नुकसान के तराजू पर तौलकर गढ़ती रही हैं।

मुलायम की कलाबाजियाँ और संसदीय वामपन्थियों की फजीहत

पिछले कुछ अर्से के दौरान समाजवादी पार्टी के आला नेता मुलायम सिंह यादव का धर्मनिरपेक्ष मुखौटा जितना तार-तार हुआ है, वह इसी बात का प्रमाण है कि पूँजीवादी चुनावी राजनीति के दायरे में कोई भी पार्टी सच्ची धर्मनिरपेक्ष हो ही नहीं सकती। उत्तर प्रदेश में सरकार बनाने के लिये भाजपा से किया गया उनका गुप्त समझौता अब जगजाहिर हो चुका है।

इस लोक सभा चुनाव में भी भाजपा के खिलाफ विपक्ष का साझा उम्मीदवार खड़ा करने में मुलायम सिंह की बेरुखी से अब फिर यह चर्चा जोरों पर है कि मुलायम और भाजपा में अन्दरखाने कोई समझौता हुआ है। लालू प्रसाद ने तो मुलायम को भाजपा का एजेण्ट तक घोषित कर दिया है। अभी ज्यादा दिन नहीं बीता है जब मुलायम सिंह यादव धर्मनिरपेक्षता के चैम्पियन माने जाते थे और संसदीय वामपंथी पार्टियाँ उन्हें सिर आँखों पर बिठाये हुए थीं। लेकिन मुलायम के ताजा रुख ने उन्हें चकरा दिया है। हरिकिशन सुरजीत पसीने-पसीने हो रहे हैं क्योंकि कांग्रेस को शामिल कर मुलायम सिंह जैसों के साथ एक व्यापक भाजपा विरोधी 'धर्मनिरपेक्ष' चुनावी मोर्चे का उनका सपना टूटता नज़र आ रहा है।

दरअसल, मुलायम सिंह यादव की गणित यह नज़र आ रही है कि अकेले अपने दम पर चुनाव लड़कर जितनी सीटें हथियायी जा सकें हथियायी जायें जिससे चुनाव नतीजे आने के बाद मोल-तोल के लिये दोनों छोर खुले रहें। इसी गणित के तहत अजित सिंह ने मुलायम से गाँठ जोड़ी है और ओमप्रकाश चौटाला भी इसी चाल के तहत राजग से छिटके हैं। रही बहन मायावती की बात तो चुनावों की तारीखों की घोषणा के बाद से वे भीषण दुविधा में जी रही थीं। कांग्रेस से चुनावी गँठजोड़ उन्हें फायदेमन्द तो लग रहा था लेकिन उनकी दुविधा यह थी कि अगर भाजपा गठबन्धन दुबारा सत्ता में आ गया तो ताज गलियारा प्रकरण उनकी राजनीतिक लुटिया डुबो सकता है। इसीलिये काफी उधेड़बुन के बाद आखिरकार उन्होंने ऐलान कर दिया कि उनकी पार्टी अकले चुनाव लड़ेगी। वजह साफ है। मायावती भी चुनावपूर्व गठबन्धन से अपने हाथ बाँधना नहीं चाहतीं, जिससे दोनों विकल्प खुले रहें। राजनीतिक अवसरवादिता के मामले में कीर्तिमान कायम कर चुकी बहुजन समाज पार्टी से इससे अलग किसी व्यवहार की उम्मीद वे लोग ही कर सकते हैं जो आज भी इस भ्रम में जी रहे हैं कि यह पार्टी दलित मुक्ति के सवाल पर गम्भीर है।

न कोई नारा न कोई मुद्दा फिर चुनाव किस बात का?

चुनाव की तारीखें नज़दीक आती जा रही हैं लेकिन जो चुनावी नज़ारा दिख रहा है, उसमें तमाम जोड़-तोड़, तीन-तिकड़म और सिनेमाई ग्लैमर की चमक-दमक के बीच यह बात बिल्कुल साफ उभरकर सामने आ रही है कि किसी भी चुनावी पार्टी के पास जनता को लुभाने के लिये न तो कोई मुद्दा है और न ही कोई नारा। जुबानी जमा खर्च और नारे के लिये ही सही छँटनी, तालाबन्दी, महँगाई, बेरोजगारी कोई मुद्दा नहीं है। इस बार भ्रष्टाचार को भी मुद्दा न बनाने के लिये सभी पार्टियों में एक मौन सहमति है। जब भ्रष्टाचार के हम्माम में सभी नंगे हैं, तो फिर चुनावी मंच पर खड़े होकर कौन किसको नंगा करे। उदारीकरण-निजीकरण की विनाशकारी नीतियाँ भी किसी पार्टी के लिये मुद्दा नहीं हैं क्योंकि इन नीतियों को लागू करने पर सबकी आम राय है। पिछले बारह वर्षों में केन्द्र और राज्यों में संसदीय वामपन्थियों समेत सभी पार्टियां या गठबन्धन सरकारें चला चुके हैं या चला रहे हैं और सबने इन्हीं नीतियों को आगे बढ़ाया है। देशी-विदेशी पूँजी की खिदमत करने के मामले में राष्ट्रीय या बड़ी चुनावी पार्टियां ही नहीं मुलायम सिंह यादव, ओमप्रकाश चौटाला और चन्द्रबाबू नायडू जैसे क्षेत्रीय स्तर के क्षत्रप भी होड़ मचाये हुए हैं। तब फिर सवाल उठता है कि चुनाव किस बात का?

देश का पूँजीवादी जनतंत्र आज पतन के उस मुकाम पर पहुँच चुका है, जहाँ अब इस व्यवस्था के दायरे में ही सही, छोटे-मोटे सुधारों के लिये भी आम जनता के सामने कोई विकल्प नहीं है। अब तो जनता को इस चुनाव में चुनना सिर्फ यह है कि लुटेरों का कौन सा गिरोह उन पर सवारी गाँठेगा। विभिन्न चुनावी पार्टियों के बीच इस बात के लिये चुनावी जंग का फैसला होना है कि कुर्सी पर बैठकर कौन देशी-विदेशी पूँजीपतियों की सेवा करेगा। कौन मेहनतकश अवाम को लूटने के लिये तरह-तरह के कानून बनायेगा। कौन मेहनतकश की आवाज कुचलने के लिये दमन का पाटा चलायेगा।

ऐसे में मेहनतकश अवाम के सामने विकल्प क्या है? 'बिगुल' के पन्नों पर हम बार-बार यह सचाई दुहराते रहे हैं कि विकल्प एक ही है-मौजूदा पूँजीवादी जनतंत्र का नाश और उसके स्थान पर मेहनतकशों के सच्चे जनतंत्र की स्थापना। केवल तभी मेहनतकशों को देशी-विदेशी पूँजी की गुलामी से सच्ची आज़ादी मिलेगी और पूँजीवादी जनतंत्र का पहाड़ जैसा बोझ छाती से हटाया जा सकेगा। मौजूदा पूँजीवादी जनतंत्र को उखाड़ फेंककर ही एक ऐसा समाज बनाया जा सकता है, जिसमें उत्पादन, राजकाज और पूरे समाज पर मेहनतकश अवाम का नियंत्रण कायम हो। केवल तभी भूख, बेकारी, भ्रष्टाचार से मुक्त एक नया मानवीय समाज बनाया जा सकता है।

मेहनतकश अवाम के हरावलों को मौजूदा लोक सभा चुनाव के मौके पर पूँजीवादी जनतंत्र का ठोस ढंग से भण्डाफोड़ करने के साथ ही साथ ही आम मेहनतकशों के बीच यह विकल्प भी पेश करना होगा। भले ही आज आम मेहनतकश अवाम को यह असम्भव सा लगें लेकिन हमें उनके दिलों में यह विश्वास जमाना ही होगा कि यह सम्भव है और यही एकमात्र रास्ता है।

फिर वही रस्मी कवायद...

(पेज 1 से आगे)

क्षेत्रों में यह काफी सफल रहा। लेकिन नेतृत्व के अनमनेपन और अलग-अलग यूनियनों के बंटवारे से रेल, संचार जैसे कई महत्वपूर्ण विभागों में फिर भी काम होता रहा।

इस हड़ताल ने एक बार फिर यह साबित किया कि देश का मज़दूर वर्ग अपने हक़ के लिये लड़ने को तैयार है, लेकिन ट्रेड यूनियनों का वर्तमान नेतृत्व सच्चे दिल से संघर्ष करना ही नहीं चाहता। यह तो मज़दूरों के लगातार दबाव का ही परिणाम था कि 24 फरवरी की हड़ताल सम्भव हुई। यदि कोई ईमानदार, जुझारू नेतृत्व होता तो वह इतनी बड़ी ताकत को लेकर उच्चतम न्यायालय के इस मज़दूर विरोधी फैसले के तत्काल बाद संघर्ष की एक रूपरेखा बनाकर आन्दोलन छेड़ देता। वह तो उससे भी पहले, तमिलनाडु के संघर्षरत राज्य कर्मचारियों के दमन और निष्कासन के खिलाफ आवाज उठाता और संघर्ष का ऐलान करता।

उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों के लागू होने के बाद से पिछले लगभग डेढ़ दशक के दौरान यह सचाई सामने आ चुकी है कि अस्तित्व के संकट से जूझ रहे मज़दूर वर्ग के आक्रोश को मौजूदा नेतृत्व किसी भी मुकाम तक नहीं ले जा सकता। वह सेफ्टी वाल्व की तरह प्रेशर लीक करने का ही काम कर सकता है। उसे मार्च पास्ट नहीं कदम ताल करना है। कभी संसद मार्च, कभी भारत बंद तो कभी एक दिनी हड़ताल से उसे रस्मअदायगी करनी है। पिछले एक वर्ष के दौरान ही देखें तो पिछले वर्ष 26 फरवरी को संसद मार्च, 21 मई और फिर इस वर्ष 24 फरवरी को देशव्यापी आम हड़तालों का आयोजन मात्र हुआ। इसमें संघर्षों की कहीं कोई निरन्तरता नहीं रही है।

जहां तक इंटर, बीएमएस जैसे ट्रेड यूनियन महासंघों का सवाल है, तो इनका गठन ही मज़दूर आन्दोलनों को तोड़ने के लिये हुआ है। रहा सवाल संसदीय वामपंथ की पिछलग्गू सीटू, एटक जैसे महासंघों का, तो अर्थवाद की लड़ाई लड़ते-लड़ते इनका नेतृत्व अब मज़दूरों के आर्थिक हितों की हिफाजत में भी सक्षम नहीं रह गया है। व्यापक राजनीतिक संघर्षों की तैयारी के बारे में सोचना तो उसके एजेंडे से ही गायब हो चुका है और मज़दूर वर्ग से एक के बाद एक छीने जा रहे उसके बुनियादी हकों, रोजी-रोटी पर लगातार पड़ रही मार के खिलाफ संघर्षों की कोई निरन्तरता भी नहीं दिखाई पड़ती। दिन-प्रतिदिन समूचे ट्रेड यूनियन नेतृत्व का व्यवस्थाभोगी चरित्र लगातार नंगा होता जा रहा है। ये ट्रेड यूनियनें जिन चुनावी पार्टियों के साथ नत्थी हैं उन्हीं के चरित्र के अनुरूप वे इस पूँजीवादी व्यवस्था के हितपोषण में लगी हुई हैं।

24 फरवरी की हड़ताल ने एक बार फिर यह साबित किया है कि आज मज़दूर वर्ग महज लड़ने की इच्छा ही नहीं रखता बल्कि वह वास्तव में लड़ना चाहता है। सचाई यह है कि एक-एक करके उसके अधिकारों को छीनकर जिस तरह इस लुटेरी व्यवस्था ने उन्हें कोने में ढकेल दिया है, ऐसे में लड़ने के अलावा उसके पास कोई रास्ता नहीं बचा है। दूसरी तरफ दुअन्नी-चवन्नी की अर्थवादी लड़ाइयां बिना किसी राजनीतिक परिप्रेक्ष्य के मरगिल्ली होकर दम तोड़ रही हैं। पूँजी की राक्षसी ताकतों के हमले लगातार तीखे हो रहे हैं, जबकि लाल पताकाधारी नकली वामपंथी मज़दूर वर्ग से गद्दारी करने और विभ्रम फैलाने का इतिहास रच रहे हैं।

मज़दूर यूनियनों का शीर्ष नेतृत्व वास्तव में मज़दूर विरोधी नई आर्थिक नीतियों के खिलाफ न तो लड़ सकता है और न ही लड़ना चाहता है। इस नंगी सचाई से मुँह मोड़ना मज़दूर वर्ग के लिये अब खुद अपनी टाँग में कुल्हाड़ी मारने के समान होगा। ट्रेड यूनियन आन्दोलन का यह वही नेतृत्व है जिसने पिछली आधी सदी के दौरान मज़दूर आन्दोलन को खण्ड-खण्ड में तोड़कर कमजोर किया है तथा महज वेतन-भत्ते-बोनस की लड़ाई लड़वाते-लड़वाते मज़दूर वर्ग की राजनीतिक चेतना व शक्ति को खोखला बनाकर रख दिया है।

उदारीकरण-निजीकरण की नीतियां इस पूँजीवादी व्यवस्था का आखिरी विकल्प हैं और इनके खिलाफ लड़ाई भी पूरे पूँजीवादी ढाँचे की बुनियाद पर चोट करने वाली लड़ाई है, महज कुछ अधिकारों के माँग की नहीं। पूँजीपति वर्ग आज अपने अस्तित्व की शर्त के रूप में इन नीतियों को लागू कर रहा है। मज़दूर वर्ग के लिये भी यह अस्तित्व की लड़ाई है। अब एक लम्बी, फैसलाकुन लड़ाई में उतरने के अलावा कोई रास्ता नहीं बचा है।

मज़दूर वर्ग को एक सही, सच्चे संघर्ष में उतरने के लिये अपने कन्धे पर लम्बे समय से लदे ट्रेड यूनियन नौकरशाहों को नीचे पटक देना होगा। नकली फौजियों और भितरघातियों को धक्का मारकर बाहर करना होगा और अपना सच्चा जुझारू क्रान्तिकारी नेतृत्व पैदा करना होगा। अलग-अलग यूनियनों-सेक्टरों-विभागों के बँटवारे की दीवारों को ढहा कर सभी कारखानों-विभागों के मज़दूरों-कर्मचारियों में फौलादी एकता बनानी होगी। मालिक एक हैं, पूरी राज्यसत्ता उनकी है, अतः मज़दूर तभी लड़ और जीत सकते हैं जब वे एकजुट हों। और तब एक दिन की प्रतीकात्मक हड़ताल भी पूरी व्यवस्था को ठप कर देगी।

वर्तमान नेतृत्व द्वारा चलाये जा रहे प्रतीकात्मक आन्दोलनों से अब कोई भी काम होने वाला नहीं है। यह मज़दूर वर्ग के लिये और घातक साबित होगा। मज़दूर विरोधी नीतियां चाहे सरकारें पारित करें अथवा न्यायपालिका का फरमान ज़ारी हो, इसका डटकर मुकाबला करने के लिये योजनाबद्ध संघर्ष की तैयारी में जुटना होगा। संघर्षों की निरन्तरता बनानी होगी और फैसलाकुन लड़ाई के लिये मैदान में उतरना होगा।

बकलमे–खुद

इस स्तम्भ के बारे में

इस स्तम्भ के अन्तर्गत हम जिन्दगी की जद्दोजहद में जूझ रहे मजदूरों और उनके बीच रहकर काम करने वाले मजदूर संगठनकर्ताओं- कार्यकर्ताओं की साहित्यिक रचनाएं प्रकाशित करते हैं-कविताएं, कहानियां, डायरी के पन्ने, गद्यगीत आदि-आदि।

इस स्तम्भ की शुरुआत की एक कहानी है। 'बिगुल' के सभी प्रतिनिधियों-संवाददाताओं के अनुभव से यह जुड़ी हुई है। हमने पाया कि जो कुछ पढ़े-लिखे और उन्नत चेतना के मजदूर हैं, वे गोर्की की 'मां', उनकी आत्मकथात्मक उपन्यास-त्रयी और अन्य रचनाओं को तो बेहद दिलचस्पी के साथ पढ़ते हैं, प्रेमचंद उन्हें बेहद पसन्द आते हैं, आस्त्रोव्स्की की 'अग्निदीक्षा' और पोलेवेई की 'असली इंसान' ही नहीं, कुछ तो बाल्जाक और चेर्निशेव्स्की को भी मगन होकर पढ़ते हैं। लेकिन जब हम हिन्दी के आज के सिरमौर वामपंथी कथाकारों की बहुचर्चित रचनाएं उन्हें पढ़ने को देते हैं तो वे बेमन से दो-चार पेज पलटकर धर देते हैं। पढ़कर सुनाते हैं तो उबासी या झपकी लेने लगते हैं। यदि उन सबकी राय को समेटकर थोड़े में कहा जाये, तो इसका कारण यह है कि ज्यादातर वामपंथी-प्रगतिशील लेखक आज अपनी रचनाओं में आम आदमी की जिन्दगी की, संघर्ष और आशा-निराशा की जो तस्वीर उपस्थित कर रहे हैं, वह आज की जिन्दगी की सच्चाइयों से कोसों दूर हैं। वह या तो ट्रेनों-बसों की खिड़कियों से देखे गये गांवों और मजदूर बस्तियों का चित्र है, या फिर अतीत की स्मृतियों के आधार पर रची गयी काल्पनिक तस्वीर। नयेपन के नाम पर जो कला का इन्द्रजाल रचा जा रहा है, वह भी आम जनता के लिए बेगाना है। कारण स्पष्ट है। दरअसल इन तथाकथित वामपंथियों का बड़ा हिस्सा ''वामपंथी कुलीनों'' का है। ये ''कलाजगत के शरीफजादे'' हैं जो प्रायः प्रोफेसर, अफसर या खाते-पीते मध्यवर्ग के ऐसे लोग हैं जो जनता की जिन्दगी को जानने-समझने के लिए हफ्ते-दस दिन की छुट्टियां भी उसके बीच जाकर बिताने का साहस नहीं रखते। ये अपने नेहनीड़ों के स्वामी सद्गृहस्थ लोग हैं। ये गरुड़ का स्वांग भरने वाली आंगन की मुर्गियां हैं। ये फर्जी वसीयतनामा पेश करके गोर्की, लू शुन, प्रेमचंद का वारिस होने का दम भरने वाले लोग हैं। समय आ रहा है जब क्रान्तिकारी लेखकों- कलाकारों की एकदम नई पीढ़ी जनता की जिन्दगी और संघर्षों के ट्रेनिंग-सेण्टरों से प्रशिक्षित होकर सामने आयेगी। इन कतारों में आम मजदूर भी होंगे। भारत का मजदूर वर्ग आज स्वयं अपना बुद्धिजीवी पैदा करने की स्थिति में आ चुका है। भारत का यह नया बुद्धिजीवी मजदूर या मजदूर बुद्धिजीवी सर्वहारा क्रान्ति की अगली-पिछली पांतों को नई मजबूती देगा। आज परिस्थितियां ऐसी हैं कि हम अपेक्षा करें कि भारतीय मजदूर वर्ग भी अपना इवान बाबुश्किन और मक्सिम गोर्की पैदा करेगा। 'बिगुल' की कोशिश होगी कि वह ऐसे नये मजदूर लेखकों का मंच बने और प्रशिक्षणशाला भी।

इसी दिशा में, पहलकदमी जगाने वाली एक शुरुआती कोशिश के तौर पर इस स्तम्भ की शुरुआत की गयी है। मुमकिन है कि मजदूरों और मजदूरों के बीच काम करने वाले संगठनकर्ताओं की इन रचनाओं में कलात्मक अनगढ़ता और बचकानापन हो, पर इनमें जीवित यथार्थ की ताप और रोशनी के बारे में आश्वस्त हुआ जा सकता है। जिन्दगी की ये तस्वीरें सच्ची वामपंथी कहानी का कच्चा माल भी हो सकती हैं। और फिर यह भी एक सच है कि हर नयी शुरुआत अनगढ़-बचकानी ही होती है। लेकिन मंजे-मंजाये घिसे-पिटे लेखन से या काल्पनिक जीवन-चित्रण के उच्च कलात्मक रूप से भी ऐसा अनगढ़ लेखन बेहतर होता है जिसमें जीवन की वास्तविकता और ताजगी हो। हमारा यह अनुरोध है कि मजदूर साथी अपनी जिन्दगी की क्रूर-नंगी सच्चाइयों की तस्वीर पेश करने के लिए अब खुद कलम उठायें और ऐसी रचनाएं इस स्तम्भ के लिए भेजें। ***साथ ही प्रकाशित रचनाओं पर अपनी प्रतिक्रिया भी भेजें।***

इस अंक में हम एक मजदूर कार्यकर्ता ***प्रदीप*** *का शब्दचित्र छाप रहे हैं।*

-सम्पादक मण्डल

बॉस और मोबाइल

प्रदीप

कारखाने का एक दृश्य। बॉस मोबाइल हाथ में लिये कार्यस्थल पर प्रकट होता है। चेहरे पर कटखने कुत्ते के हाव-भाव। ऐसा लगता है जैसे बरसों से मुँह न धोया हो। हमेशा की तरह मज़दूरों पर झल्ला रहा है, गालियाँ बक रहा है। गालियाँ देते समय बॉस मेंढक की तरह फुदकने लगता है। 'ये लो!' बॉस का तकियाकलाम है, जिसे वह बोलता भी अजीब ढंग से है।

बॉस : ये लो! अरे हरामजादो! स्पीड बढ़ाओ स्पीड। और इस सिलाई मशीन पर कौन है?

बॉस का एक चापलूस : सर! सिलाई मशीन चलाने वाले पाँच लोग और धागा कटिंग वाले दो लोग, कुल सात आज काम पर नहीं आये हैं।

बॉस : कहाँ मर गये ये सब? ये लो! एडवांस आर्डर मिला हुआ है। काम का सीजन चल रहा है और ये छुट्टी मना रहे हैं। इन हरामखोरों से कहो कि अब छुट्टियाँ ही मनाते रहें, काम पर आने की जरूरत नहीं। (जोर-जोर से बोलते हुए हाँफने लगता है।)

(तभी बॉस की नजर कपड़े के कुछ पीसों पर पड़ती है। उन्हें हाथ में लेकर उलटता-पुलटता है। पैर पटकते हुए चेकर के पास पहुँचता है।)

चेकर : नमस्ते! सर जी!

बॉस : नमस्ते की औलाद! क्या है यह सब?

चेकर : सर! मुझे नहीं पता। लॉण्ड्रीमैन ही कटिंग ले जाता है। उसे पीस देखना चाहिये था कि सही है या खराब।

बॉस : अबे! ये लो! चेकिंग तू करता है या लॉण्ड्रीमैन? ये लो! तू चेक करके देता तो गलती कैसे होती? (हाथ नचाते हुए) तू क्या सोचता है? ये लो! लॉण्ड्रीमैन बैठ कर कपड़े चेक करेगा तो कपड़े कौन धोयेगा? तेरा बाप?

(तभी मोबाइल की घंटी बजने लगती है.. ओम जय जगदीश हरे...)

बॉस : अब कौन मर गया ससुरा। हलो! हलो... ये लो आवाज ही नहीं आ रही। हलो! हलो! (फोन को झल्लाते हुए ऐसे बन्द करता है, जैसे उसे चिढ़ाने के लिये ही घण्टी बजी हो।)

चेकर (बड़बड़ाते हुए) : साँस फूलने तक कुत्ता भौंकता ही रहता है।

बॉस : कौन सा मंत्र जाप कर रहा है? ये लो! अबे इन पीसों का बता।

चेकर : सर! मैं तो कह रहा था कि तब यह गलती जरूर उन कटिंग करने वालों की है जो ऐसे-वैसे (हाथ से अभिनय करते हुए) कैंची चला देते हैं।

बॉस : तुम सब कामचोर हो। फौरन जाकर लॉण्ड्रीमैन और कटिंग वालों को बुलाकर लाओ। ये लो! यह सुपरवाइजर कहाँ गायब हो गया?

सुपरवाइजर : यस सर!

बॉस : यही सुपरवाइजरी कर रहा है तू। ये लो! अगर एक भी आर्डर रद्द हुआ तो तेरी खैर नहीं।

(तभी फिर मोबाइल की घण्टी बज उठती है.....ओम जय जगदीश हरे...)

बॉस (चिड़चिड़ाते हुए): हलो! हलो!... ये लो! कौन है?

(अचानक बॉस का सुर बदल जाता है, दुम हिलाने व नाक रगड़ने वाले अन्दाज में बोलता है) ओह सर आप? मुझे पता नहीं था कि आप हैं। ये लो! सॉरी सर। यस सर। यस सर। सर! अबकी कोई शिकायत नहीं होगी। और आपका आर्डर समय से पहले ही तैयार हो जायेगा। ये लो! सर एक मिनट। (सुपरवाइजर की ओर देखते हुए) अबे ये जनरेटर कैसे बन्द हो गया। ये लो! सारी मशीनें रुकी पड़ी हैं और साला यहाँ टुकुर-टुकुर मुँह ताक रहा है। अबे! चालू कर जल्दी।

(बॉस के चेहरे के हाव-भाव लगातार बदल रहे हैं) यस सर! सर क्या बताऊँ। नहीं सर नहीं। आप जैसा कहेंगे, वैसा ही होगा सर। ये लो! सर मुझे तो बिल्कुल नहीं पता था।

...अबे साले फिर सुई तोड़ दी। कितना शोरगुल है। (चीखकर) अबे हरामी! मशीन तेरे बाप की है क्या? ये लो! धीरे क्यों नहीं चलाता। घबरा मत मक्कार! तेरी दिहाड़ी में से काट लूँगा।

(फिर मोबाइल पर) अरे सर! ये लो! मैं इसे आज ही चेक करवाता हूँ।

ये लो! फिर बिजली गुल। अरे नमकहरामो! तुम सब मुझे बर्बाद कर डालोगे। ये लो! अबे इलेक्ट्रीशियन कुत्ते साले... बुलाओ उसको। मैं उसकी दस दिन की दिहाड़ी काटता हूँ। साले! समझते क्या हैं?

(फिर मोबाइल पर) सॉरी सर। ये लो!

आप नहीं सर! ये साले वर्कर... सर! प्लीज, बस एक बार। ये लो! सर! आप...प्लीज...सर...

अबे नालायको! ये लो! उसने फोन काट दिया। सुबह-सुबह तुम्हारे कारण देवता नाराज हो गये। कम्पनी का पचास फीसदी माल खरीदता है यह आदमी। और तुम साले... ये लो! अबे सुपरवाइजर चल मेरे कमरे में। आज...

(जाते हुए बॉस ऐसे लगता है जैसे कटखने कुत्ते को छोटे-छोटे बच्चों ने मिल कर खूब पीटा हो।)

आउटसोर्सिंग विवाद...

(पेज 3 से आगे)

प्रौद्योगिकी क्षेत्र की कम्पनियों पर पड़ेगा। यह इन कम्पनियों के आला कर्ताधर्ता और देश की सरकार भी मानती है। टीसीएस, विप्रो और इन्फोसिस जैसी इस क्षेत्र की अग्रणी कम्पनियों के आला कर्ताधर्ता भी अमेरिकी कानून के तात्कालिक प्रभावों को लेकर निश्चिन्त हैं लेकिन भविष्य के प्रति चिन्तित हैं। अगर अमेरिकी हुक्मरान लोकरंजकतावादी दबावों के आगे और झुकने को मजबूर हुए तो संघीय सरकार के नक्शेकदम पर अमेरिका की राज्य सरकारें भी इस तरह के कानून पास कर सकती हैं। तब इनके मुनाफे पर निश्चित ही भारी चोट पहुँचेगी क्योंकि इन कम्पनियों ने अनेक अमेरिकी राज्यों के ठेके ले रखे हैं जिससे भारी मुनाफा पीटकर वे मालामाल हो रही हैं। इसीलिए इन कम्पनियों के नुमाइन्दों ने और उनकी हितपोषक सरकार ने अमेरिकी कानून के प्रति विरोध जताया है। अमेरिका पर विश्व व्यापार संगठन की शर्तों का उल्लंघन करते हुए 'संरक्षणवादी' हथकण्डों का सहारा लेने का आरोप लगाया जा रहा है।

भारतीय शासकों से अमेरिकी ब्लैकमेलिंग

उधर अमेरिकी हुक्मरानों ने इस कानून की आड़ में भी भारतीय शासक वर्गों के साथ ब्लैकमेलिंग करना शुरू कर दिया है। कानून रद्द करने की शर्त के रूप में वे भारत के कृषि क्षेत्र और सेवा क्षेत्र को अमेरिकी पूँजी के लिये और खुला करने का दबाव बना रहे हैं। अमेरिकी विदेश मंत्री कॉलिन पावेल की ताजा भारत यात्रा के एजेण्डे में यह एक अहम मुद्दा है। ज्यादा सम्भावना इसी बात की है कि देशी सूचना प्रौद्योगिकी कम्पनियों के दबाव में भारत सरकार अमेरिकी शर्तों के आगे आखिरकार घुटने टेक देगी। सम्भावना इस बात की भी है कि अमेरिका में राष्ट्रपति चुनाव सम्पन्न होने के बाद इस कानून में कुछ ढील दी जायेगी। हालाँकि, चुनावी मुद्दा बन जाने के पहले से ही जनअसन्तोष के चलते अमेरिकी शासकों ने विदेशों से आने वाले (खासकर भारत जैसे एशियाई देशों से) विशेषज्ञ कामगारों (खासतौर पर सूचना तकनीक विशेषज्ञों) को वीसा देने का कानून सख्त बना दिया गया है। वर्ष 2004 में सिर्फ 65,000 आप्रवासियों को वीसा देने का लक्ष्य रखा गया है जबकि पिछले साल यह संख्या 1,95,000 थी।

'सीटू'-'एटक' का रवैया बनाम मज़दूर वर्ग की अन्तरराष्ट्रीय एकजुटता

आउटसोर्सिंग पर अमेरिकी कानून का सीटू, एटक जैसी यूनियनों का विरोध उनके ट्रेड यूनियन जनाधार की मजबूरियों से पैदा हुआ है। आज इन यूनियनों का अधिकांश जनाधार सफेदपोश मध्यवर्गीय मजदूरों के बीच सिमटकर रह गया है। इसलिये आउटसोर्सिंग विवाद पर सही सर्वहारा अन्तरराष्ट्रीयतावादी नज़रिया अपनाने के बजाय एक ऐसा रुख अपनाने पर वे बाध्य हुए हैं जो भारतीय मेहनतकश अवाम को अमेरिकी मेहनतकश अवाम के खिलाफ लाकर खड़ा कर देती है। यह इन महासंघों की मजदूर राजनीति की सीमाओं और उनके चरित्र को ही उजागर करता है। सोचिये कि जब यह विवाद आगे बढ़ेगा तो सीटू-एटक जैसी यूनियनें और अमेरिकी यूनियनें एक-दूसरे के खिलाफ खड़ी होंगी।

आउटसोर्सिंग की परिघटना और उससे जुड़ा विवाद दरअसल विश्व पूँजीवादी तंत्र के संकटों और उसके अन्तरविरोधों से पैदा हुआ है। यह आगे और गहरायेगा और इसमें नये-नये आयाम जुड़ सकते हैं। मुनाफे के लिये गलाकाटू होड़ कर रहे अमेरिकी-यूरोपीय पूँजीपतियों के लिये आउटसोर्सिंग आज की न टाली जा सकने वाली जरूरत बन गयी है। यह मुमकिन नहीं लगता कि इनकी सरकारें अपने पूँजीपति आकाओं की जरूरत को दरकिनार कर आउटसोर्सिंग पर कोई कारगर रोक लगा पायेंगी। इससे इन देशों में कई स्तर के सामाजिक संकट पैदा होने की सम्भावनाएं नज़र आ रही हैं। जहाँ एक ओर बढ़ती बेरोजगारी मेहनतकशों के आन्दोलनों को जन्म देगी, वहीं एशियाई मूल के लोगों के खिलाफ नस्ली नफ़रत और हिंसा का दौर भी शुरू हो सकता है।

ऐसे में देश के मेहनतकश अवाम को आउटसोर्सिंग विवाद पर सही रुख अपनाने की जरूरत है। यह विवाद मौजूदा तंत्र के कायम रहते किसी न किसी रूप में जारी रहने वाला है। इस विवाद को हम पिछले दिनों असम और बिहार के विवाद के आइने में भी समझ सकते हैं। आज सवाल आउटसोर्सिंग के पक्ष या विपक्ष में खड़ा होने का नहीं है। जरूरत है मेहनकश अवाम की ताकत को समूचे पूँजीवादी-साम्राज्यवादी तंत्र के खिलाफ संगठित करने की । सबको रोजगार मुहैया कराने का नारा आज मेहनतकश अवाम की ताकत को इस दिशा में मोड़ने का एक कारगर नारा बन गया है।

- योगेश पन्त

'हम भ्रम की चादर फैलाते हैं...'

हावर्ड फास्ट

इस बार हम हावर्ड फास्ट के प्रसिद्ध उपन्यास 'आदिविद्रोही' का एक अंश 'बिगुल' के पाठकों के लिये प्रस्तुत कर रहे हैं। उपन्यास के इस प्रसंग में सिसेरो और ग्रैकस नामक दो रोमनों की बातचीत है। ये दोनों गुलामों पर टिके रोमन साम्राज्य की सत्ता के दो स्तम्भ थे। सिसेरो दास व्यवस्था का समर्थन करने वाला विचारक और प्रखर वक्ता था और ग्रैकस एक घाघ राजनीतिज्ञ। यहाँ ग्रैकस शासक वर्गों के राजनेताओं की बेहयाई भरी स्पष्टवादिता के साथ बताता है कि लूट, शोषण और दासता पर आधारित समाज व्यवस्था के चलते रहने के लिये उस जैसे फरेबी राजनीतिज्ञों की भूमिका कितनी जरूरी होती है। शासक वर्गों के राजनीतिज्ञों की जो भूमिका हजारों साल पहले दास समाज में थी, आज के पूँजीवादी समाज में भी वही है-यानी, आम जनता को भरमाए रखना ताकि वह अन्याय और अत्याचार के खिलाफ न उठ खड़ी हो और अपने ही शोषकों का काम आसान करती रहे। - सम्पादक

उपन्यास अंश

"...सिसेरो मुस्कराया और बोला-तुम राजनीतिज्ञ हो इसलिये मुझे बतलाओ न कि राजनीतिज्ञ क्या होता है?

-चालबाज, ग्रैकस ने संक्षेप में उत्तर दिया।

-तुम और कुछ हो न हो, स्पष्टवादी जरूर हो।

-मुझमें यही एक गुण है और यह एक बहुत मूल्यवान गुण है। राजनीतिज्ञ के अन्दर इस चीज़ को देखकर लोग अक्सर इसको ईमानदारी समझने की भूल किया करते हैं। देखो हम लोग एक गणतन्त्र में रहते हैं। इसका मतलब है कि बहुत से लोग ऐसे हैं जिनके पास कुछ भी नहीं है और मुट्ठीभर लोग ऐसे हैं जिनके पास बहुत कुछ है। और जिनके पास बहुत कुछ है उनकी रक्षा, उनका बचाव उन्हीं को करना है जिनके पास कुछ भी नहीं। इतना ही नहीं बल्कि वे लोग जिनके पास बहुत कुछ है उनको अपनी सम्पत्ति की रक्षा करनी होती है और इसलिये वे जिनके पास कुछ भी नहीं है, उनको तुम्हारे और मेरे और हमारे अच्छे मेजबान ऐण्टोनियस की सम्पत्ति के लिये जान देने को तैयार रहना चाहिये। इसके साथ-ही-साथ यह भी है कि हमारी तरह के लोगों के पास बहुत से गुलाम होते हैं। ये गुलाम हमको पसन्द नहीं करते। हमको इस भ्रम का शिकार न होना चाहिये कि गुलाम अपने मालिकों को पसन्द करते हैं। वे नहीं करते और इसलिये गुलाम हमारी रक्षा गुलामों से नहीं कर सकते। इसलिये बहुत से लोग जिनके पास गुलाम नहीं हैं, उनको हमारे लिये जान देने को तैयार रहना चाहिये ताकि हम अपने गुलाम रख सकें। रोम के पास ढाई लाख सैनिक हैं। इन सैनिकों को विदेशों में जाने के लिये तैयार रहना चाहिये, इसके लिये तैयार रहना चाहिये कि मार्च करते-करते उनके पैर घिस जायें, कि वे गन्दगी में और ग़लाज़त में रहें, कि वे खून में लोट लगायें-ताकि हम सुरक्षित रहें और आराम से ज़िन्दगी बितायें और अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति को बढ़ायें। जब ये सैनिक स्पार्टकस से लड़ने के लिये गये तो इनके पास ऐसी कोई चीज़ न थी जिसकी कि वे रक्षा करते जैसी कि गुलामों के पास थी। आख़िर क्या चीज उनके पास थी जिसकी रक्षा करने के लिये वे स्पार्टकस से लड़ने गये थे? मगर तब भी गुलामों से लड़ते हुए वे हजारों की संख्या में मारे गये। हम इसके आगे भी जा सकते हैं। वे किसान जो गुलामों से लड़ते हुए मारे गये, सेना में उनके होने का सबसे पहला कारण यह है कि जागीरदारों ने उनको उनके खेतों से खदेड़ दिया है। गुलामों को लेकर जो बड़ी-बड़ी जागीरें चलती थीं जिनमें बड़े पैमाने पर खेती होती थी उन्होंने उन किसानों को एकदम भिखमंगा बना दिया है, ऐसा भिखमंगा जिसके पास जमीन का एक टुकड़ा भी नहीं; और फिर मजा यह है कि इन्हीं जागीरों की हिफ़ाज़त के लिये वे किसान जान देते हैं। इसको देखकर कहने का जी होता है कि वाह, यह तो हद हो गयी! क्योंकि मेरे प्यारे दोस्त सिसेरो, जरा सोचो कि अगर गुलाम विजयी होते हैं तो इससे हमारे बहादुर रोमन सैनिक का क्या नुकसान होता है? सच बात तो यह है कि उन गुलामों को हमारे इस रोमन सैनिक की बड़ी सख्त ज़रूरत होगी क्योंकि ज़मीन की जुताई के लिये गुलाम खुद काफ़ी न होंगे। ज़मीन इतनी काफ़ी होगी कि सबको पूरी पड़ जाय और तब हमारे इस रोमन सैनिक के पास वह चीज होगी जिसका सपना वह सबसे ज्यादा देखा करता है, जमीन का उसका अपना टुकड़ा और उसका निज का छोटा सा मकान। मगर तब भी वह अपने ही सपनों को नष्ट करने के लिये लड़ने को चला जाता है। किसलिए? इसीलिये कि सोलह गुलाम मेरे जैसे एक मोटे थुलथुल बुड्ढे खूसट को गद्देदार पालकी में बिठालकर ढोते फिरें! क्या तुम कह सकते हो कि मैं जो कुछ कह रहा हूँ झूठ कह रहा हूँ?

-मेरा ख़याल है कि जो कुछ तुम कह रहे हो अगर वह किसी साधारण आदमी ने बीच चौक में खड़े होकर कहा होता तो हमने उसे सलीब पर चढ़ा दिया होता।

-सिसेरो सिसेरा, ग्रैकस हँसा, मैं क्या इसे अपने लिये धमकी समझूँ? मैं बहुत मोटा और भारी बुड्ढा हूँ, मुझे सलीब पर चढ़ाना मुमकिन न होगा। और फिर यह तो बताओ कि सच बात को सुनकर तुम इतना घबरा क्यों जाते हो? दूसरों से झूठ बोलना ज़रूरी है मगर क्या यह भी जरूरी है कि हम खुद अपने ही झूठ पर विश्वास करें?

-यह तुम्हारा ख़याल है। मगर तुम इस बुनियादी सवाल को छोड़ जाते हो-क्या कोई आदमी किसी दूसरे आदमी जैसा ही होता है या उससे भिन्न होता है? तुम्हारी इस छोटी से वक्तृता में यही असंगति है। तुम पहले से यह मानकर चलते हो कि सब आदमी बिलकुल एक से होते हैं। मैं इस बात को नहीं मानता। मैं मानता हूँ कि श्रेष्ठ लोगों का अपना एक वर्ग होता है, ऐसे लोग जो दूसरों से ऊँचे होते हैं। बहस की चीज यह नहीं है कि उनको ईश्वर ने ऐसा बनाया या परिस्थितियों ने। मगर इतना है कि उन लोगों में शासन करने की योग्यता होती है। और चूँकि उनमें शासन करने की योग्यता होती है इसीलिए वे शासन करते हैं। और चूँकि बाक़ी लोग भेड़-बकरियों के समान होते हैं इसलिए उनका आचरण भी भेड़-बकरियों के समान होता है। देखो न तुम एक सूत्र पेश करते हो; असल मुश्किल तो उसकी व्याख्या करने में होती है। तुम समाज की एक तसवीर पेश करते हो, लेकिन अगर सचाई भी तुम्हारी तसवीर की ही तरह असंगत होती, तो समूचा ढाँचा एक ही दिन में भहरा पड़ा होता। तुम क्यों यह नहीं बतला पाते कि वह कौन-सी चीज़ है जो इस असंगत पहले को समेटकर रखे हुए है और गिरने नहीं देती।

ग्रैकस ने सिर हिलाया और कहा-उसको समेटकर रखनेवाला, उसको न गिरने देनेवाला मैं हूँ।

-तुम? अकेले तुम?

-सिसेरो, क्या तुम सचमुच मुझे गधा समझते हो? मैंने बहुत लम्बी और खतरों से भरी हुई जिन्दगी गुजारी है और मैं अब भी चोटी पर हूँ। तुमने थोड़ी देर पहले मुझसे पूछा था कि राजनीतिज्ञ क्या होता है? राजनीतिज्ञ ही इस उलटे-सीधे मकान को खड़ा रखने वाला सीमेण्ट है। उच्च वंशों वाले स्वयं इस काम को नहीं कर सकते। पहली बात तो यह है कि उनका सोचने का ढंग तुम्हारे जैसा है और रोम के नागरिकों को यह बात पसन्द नहीं है कि कोई उनको भेड़-बकरी कहे। भेड़-बकरी वे नहीं हैं-जैसा कि एक न एक दिन तुम्हारी समझ में आयेगा। दूसरी बात यह है कि इस उच्चवंशीय व्यक्ति को इस साधारण नागरिक के बारे में कुछ भी नहीं मालूम। अगर यह चीज़ बिलकुल उसी पर छोड़ दी जाय तो यह ढाँचा एक दिन में भहरा पड़े। इसीलिए वह मेरे जैसे लोगों के पास आता है। वह हमारे बिना जिन्दा नहीं रह सकता। जो चीज नितान्त असंगत है हम उसके अन्दर संगति पैदा करते हैं। हम लोगों को यह बात समझा देते हैं कि जीवन की सबसे बड़ी सार्थकता अमीरों के लिए मरने में है। हम अमीरों को समझा देते हैं कि उन्हें अपनी दौलत का कुछ हिस्सा छोड़ देना चाहिये ताकि बाक़ी को वे अपने पास रख सकें। हम जादूगर हैं। हम भ्रम की चादर फैला देते हैं और वह ऐसा भ्रम होता है जिससे कोई बच नहीं सकता। हम लोगों से कहते हैं, जनता से कहते हैं-तुम्हीं शक्ति हो। तुम्हारा वोट ही रोम की शक्ति और कीर्ति का स्रोत है। सारे संसार में केवल तुम्हीं स्वतंत्र हो। तुम्हारी स्वतंत्रता से बढ़कर मूल्यवान कोई भी चीज़ नहीं है, तुम्हारी सभ्यता से अधिक प्रशंसनीय कुछ भी नहीं है। और तुम्हीं उसका नियन्त्रण करते हो; तुम्हीं शक्ति हो, तुम्हीं सत्ता हो। और तब वे हमारे उम्मीदवार के लिये वोट दे देते हैं। वे हमारी हार पर आँसू बहाते हैं, और हमारी जीत पर खुशी से हँसते हैं। और अपने ऊपर गर्व अनुभव करते हैं और अपने को दूसरों से बढ़ा-चढ़ा समझते हैं क्योंकि वे गुलाम नहीं हैं। चाहे उनकी हालत कितनी ही नीचे गिरी हुई क्यों न हो, चाहे वे नालियों में ही क्यों न सोते हों, चाहे वे तलवार के खेल और घुड़दौड़ के मैदानों में सारे-सारे दिन लकड़ी की सस्ती-सस्ती सीटों पर ही क्यों न बैठे रहते हों, चाहें वे अपने बच्चों के पैदा होते ही उनका गला क्यों न घोंट देते हों, चाहे उनकी बसर खैरात पर ही क्यों न होती हो और चाहे अपनी पैदाइश से लेकर मरने तक उन्होंने एक रोज़ काम करने के लिये हाथ न उठाया हो, यह सब चाहे जो हो मगर इतना इत्मीनान क्या कम है कि वे गुलाम नहीं हैं! वे धूल हैं मगर हर बार जब वे किसी गुलाम को देखते है तो उनका अहम् जागता है और वे अपने आपको गर्व से और शक्ति से भरा हुआ महसूस करते हैं। उस वक़्त उनकी समझ में बस यही आता है कि वे रोम के नागरिक हैं और सारी दुनिया के लोग उनसे ईष्या करते हैं। और सिसेरो, यह मेरी विशेष कला है। राजनीति को कभी तुच्छ नहीं समझना।..."

◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆

साम्राज्यवादी डाकुओं की बढ़ती लूट,
देशी सरमायेदारों की फूलती थैलियां,
मेहनतकशें की बढ़ती तबाही,
बेरोजगारी, आसमान छूती मंहगाई,
छंटनी-तालाबंदी, तबाही-बर्बादी,
काले कानून, लाठी-गोली का प्रजातंत्र,
बिकता न्याय,
अराजकता, लूटपाट, गुण्डागर्दी,
दलाली, कमीशनखोरी, भ्रष्टाचार,
मण्डल-कमण्डल, दंगे-फसाद,
भ्रष्ट सरकार, झूठी संसद, नपुंसक विरोध
इनसे निजात पाने की राह क्या है?

इलेक्शन या इंकलाब?

संसद-विधानसभाएं बहसबाजों के अड्डे हैं
ये पूंजीवादी राज्यसत्ता के दिखाने के दांत हैं।
पुलिस, फौज और जेल
कोर्ट-कचहरी, कानून और अफसरशाही
इसके जबड़े और पंजे हैं।

चुनावी राजनीति के मायाजाल से बाहर आओ!
क्रान्तिकारी राजनीति की अलख जगाओ!!

पार्टी के भीतर गलत विचारों को सुधारने के बारे में (एक अंश)

माओ त्से-तुङ

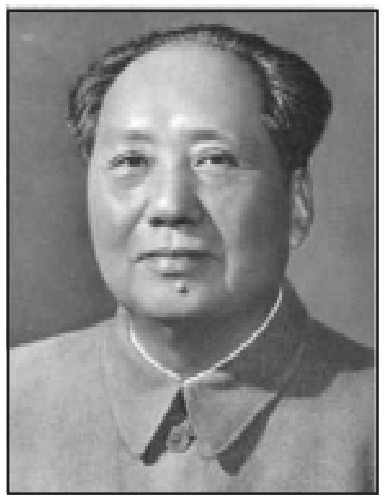

मनोगतवाद के बारे में

कुछ पार्टी-सदस्यों में मनोगतवाद गंभीर सीमा तक मौजूद है, जो राजनीतिक परिस्थिति का विश्लेषण करने और काम का निर्देशन करने में बहुत ही हानिकारक होता है। कारण, राजनीतिक परिस्थिति के मनोगतवादी विश्लेषण और काम के मनोगतवादी निर्देशन का लाजमी नतीजा या तो अवसरवाद होता है, या मुहिमजोई। जहां तक पार्टी के अंदर की जाने वाली मनोगतवादी आलोचना, गैरजिम्मेदाराना व निराधार बातचीत या पारस्परिक संदेह का सवाल है, इन सबसे अक्सर बेउसूली विवाद उठ खड़े होते हैं और पार्टी का संगठन टूटता है।

पार्टी के अंदर की जाने वाली आलोचना के बारे में एक बात का जिक्र और कर देना चाहिए और वह यह कि कुछ साथी अपनी आलोचना में बड़ी समस्याओं पर ध्यान न देकर केवल छोटी-छोटी समस्याओं पर ही ध्यान देते हैं। वे नहीं समझते कि आलोचना का मुख्य कार्य राजनीतिक और संगठनात्मक गलतियां बताना है। जहां तक व्यक्तिगत खामियों का सवाल है, जब तक उनका संबंध राजनीतिक और संगठनात्मक गलतियों से न हो, तब तक जरूरत से ज्यादा नुक्ताचीनी करने और संबंधित साथी को परेशानी में डालने की आवश्यकता नहीं। इसके अलावा एक बड़ा खतरा यह है कि यदि एक बार ऐसी आलोचना का सिलसिला चल गया, तो पार्टी-सदस्यों का ध्यान मामूली खामियों पर ही पूरी तरह केंद्रित हो जाएगा, हर कोई दब्बू बन जाएगा, जरूरत से ज्यादा सशंकित रहेगा और पार्टी के राजनीतिक कार्यों को भूल जाएगा।

इसे सुधारने का मुख्य उपाय है पार्टी-सदस्यों को शिक्षित करना, जिससे कि उनके चिंतन और पार्टी-जीवन को राजनीतिक और वैज्ञानिक सतह तक ऊंचा उठाया जा सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमें चाहिए कि: (1) राजनीतिक परिस्थिति का विश्लेषण करने और वर्ग-शक्तियों को आंकने में, पार्टी-सदस्यों को मनोगतवादी विश्लेषण और मूल्यांकन के बदले मार्क्सवादी-लेनिनवादी तरीका लागू करना सिखाएं; (2) पार्टी-सदस्यों का ध्यान सामाजिक और आर्थिक छानबीन और अध्ययन की ओर खींचें जिसके आधार पर संघर्ष की कार्यनीति और काम के तरीके निर्धारित किए जाएं, तथा यह समझने में साथियों की मदद करें कि वास्तविक परिस्थितियों की छानबीन किए बिना वे हवाई कल्पना और मुहिमजोई के गढ़े में जा गिरेंगे; तथा (3) पार्टी के भीतर की जाने वाली आलोचना में मनोगतवाद, स्वेच्छाचारिता और घटिया दर्जे की नुक्ताचीनी से सावधान रहें; जो कुछ कहा जाए, वह तथ्यों पर आधारित हो और आलोचनाओं का केंद्र-बिंदु राजनीति को बनाया जाए।

व्यक्तिवाद के बारे में

लाल सेना के पार्टी-संगठन में व्यक्तिवादी प्रवृत्ति इन रूपों में प्रकट होती है:

1. बदला लेने की मनोवृत्ति। कुछ साथी पार्टी के अंदर किसी सैनिक साथी द्वारा आलोचना किए जाने पर उससे पार्टी के बाहर बदला लेने के अवसर ढूंढ़ते हैं; मारपीट या गाली-गलौज बदला लेने का एक तरीका है। वे पार्टी के अंदर भी बदला लेने का मौका ढूंढ़ते हैं। "तुमने मेरी इस मीटिंग में आलोचना की है, इसलिए मैं दूसरी मीटिंग में तुम्हारे दोष दिखाकर तुमसे बदला लूंगा।" बदला लेने की इस मनोवृत्ति का एकमात्र कारण है व्यक्तिगत बातों को प्रस्थान-बिंदु बनाकर वर्ग के हितों और समूची पार्टी के हितों की अवहेलना करना। इस मनोवृत्ति का निशाना शत्रु-वर्ग नहीं होते, बल्कि अपनी ही पांतों के व्यक्ति होते हैं। यह एक ऐसा घुन है जो संगठन को और उसकी जुझारू क्षमता को कमजोर बना देता है।

2. संकीर्ण ग्रुपवाद। कुछ साथी केवल अपने छोटे से ग्रुप के हितों को ही ध्यान में रखते हैं और आम हितों को नजरअंदाज कर देते हैं। हालांकि ऊपर से देखने पर तो यह व्यक्तिगत हितों की तलाश नहीं जान पड़ती, लेकिन वास्तव में इसमें एक बहुत ही संकीर्ण किस्म का व्यक्तिवाद निहित होता है। इसलिए इसका प्रभाव भी बहुत ही विनाशकारी और विघटनकारी होता है। लाल सेना में संकीर्ण ग्रुपवादी मनोवृत्ति का बराबर बोलबाला रहा है। हालांकि आलोचना करने से अब स्थिति उतनी गंभीर नहीं रह गई है, फिर भी उसके अवशेष अब तक मौजूद हैं और उन्हें दूर करने के लिए और भी कोशिश करना जरूरी है।

3.मुलाजिमों जैसी मनोवृत्ति। कुछ साथी यह महसूस नहीं करते कि पार्टी और लाल सेना, जिनके वे सदस्य हैं, ये दोनों ही क्रांतिकारी काम पूरा करने के साधन हैं। वे यह नहीं समझते कि वे खुद क्रांति के निर्माता हैं, बल्कि यह महसूस करते हैं कि वे केवल किसी वरिष्ठ अफसर के प्रति ही उत्तरदायी हैं, क्रांति के प्रति नहीं। क्रांति के प्रति यह निष्क्रिय, मुलाजिमों जैसी मनोवृत्ति भी व्यक्तिवाद का ही एक रूप है। इससे यह मालूम हो जाता है कि क्रांति के लिए बिलाशर्त काम करनेवाले सक्रिय तत्वों की तादाद इतनी कम क्यों है। अगर मुलाजिमों जैसी मनोवृत्ति दूर न की गई तो सक्रिय तत्वों की संख्या नहीं बढ़ेगी और क्रांति का भारी बोझ इने-गिने लोगों के कंधों पर ही रहेगा, जिससे संघर्ष को गहरा धक्का लगेगा।

4. ऐशो-आराम की मनोवृत्ति। लाल सेना में ऐसे लोग भी काफी हैं जिनका व्यक्तिवाद ऐशो-आराम की मनोवृत्ति के रूप में प्रकट होता है। वे हमेशा इस बात की आशा लगाए रहते हैं कि उनकी यूनिट बड़े शहरों में कूच करेगी। वे काम करने के लिए नहीं, बल्कि ऐशो-आराम करने के लिए बड़े शहरों में जाना चाहते हैं। उन्हें लाल इलाकों में, जहां का जीवन कठिन है, काम करना कतई पसंद नहीं है।

5. निष्क्रियता। कुछ साथी, जब कोई बात उनकी इच्छा के विरुद्ध पड़ती है, निष्क्रिय हो जाते हैं और काम करना बंद कर देते हैं। इसका मुख्य कारण राजनीतिक शिक्षा की कमी है, हालांकि कभी-कभी इसका कारण नेतृत्व द्वारा अनुचित ढंग से कामकाज चलाना, अनुचित ढंग से काम बांटना या अनुचित ढंग से अनुशासन लागू करना भी होता है।

6. सेना को छोड़ देने की इच्छा। ऐसे लोगों की संख्या बढ़ रही है जो लाल सेना छोड़कर स्थानीय काम करना चाहते हैं। इसका कारण विशुद्ध रूप से व्यक्तिगत नहीं बल्कि यह भी है: (1) लाल सेना में जीवन की भौतिक कठिनाइयां, (2) लंबे संघर्ष के बाद थकान का एहसास, और (3) नेतृत्व द्वारा अनुचित ढंग से कामकाज चलाना, अनुचित ढंग से काम बांटना या अनुचित ढंग से अनुशासन लागू करना।

इसे सुधारने का मुख्य उपाय यह है कि विचारधारा के क्षेत्र में व्यक्तिवाद को दूर करने के लिए राजनीतिक शिक्षा का काम जोरों से बढ़ाया जाए। इसके अलावा, उचित ढंग से कामकाज चलाना चाहिए, उचित ढंग से काम बांटना चाहिए और उचित ढंग से अनुशासन लागू करना चाहिए। साथ ही भौतिक परिस्थितियों को अधिक अनुकूल बनाने के लिए लाल सेना के भौतिक जीवन को सुधारने के उपाय खोजने चाहिए तथा आराम और बहाली का जो भी मौका मिले उससे फायदा उठाना चाहिए। राजनीतिक शिक्षा का काम करते समय हमें यह जरूर बता देना चाहिए कि सामाजिक उत्पत्ति की दृष्टि से व्यक्तिवाद पार्टी के भीतर निम्न-पूंजीवादी और पूंजीवादी विचारों का ही प्रतिबिंब है।

आप फील गुड क्यों नहीं करते हैं?

दुनिया में किससे डरते हैं
मिनरल वाटर पीते हैं
आप कार में चलते हैं
बात मोबाइल पर करते हैं
आप फील गुड क्यों नहीं करते हैं

खेती क्यों नहीं करते हैं
ट्रैक्टर क्यों नहीं लेते हैं
कंप्यूटर क्यों नहीं लेते हैं
हम क्रेडिट कार्ड जो देते हैं
आप फील गुड क्यों नहीं करते हैं

आप अमरीका में रहते हैं
देश को रोशन करते हैं
चंदा हमको देते हैं
हम चंदे से दंगा करते हैं
आप फील गुड क्यों नहीं करते हैं

जय-जय राम जपते हैं
संतों की वाणी सुनते हैं
पापों का तरपन करते हैं
वाजपेयी पे मरते हैं
आप फील गुड क्यों नहीं करते हैं

जो तोगड़िया से डरते हैं
जो आडवाणी से डरते हैं
मंदिर से जेबें भरते हैं
ऐश्वर्या पर मरते हैं
फील गुड वो ही करते हैं

एमबीए की तैयारी करते हैं
आईएएस की तैयारी करते हैं
आपकी मेहनत का फल लाते हैं
हम जब पेपर लीक कराते हैं
आप फील गुड क्यों नहीं करते हैं

आपके लिए इतिहास बदलते हैं
संस्कृति की रक्षा करते हैं
ओझागिरी की पढ़ाई कराते हैं
और थोड़ी सी फीस बढ़ाते हैं
तो आप फील गुड क्यों नहीं करते हैं

आडवाणी जी भी करते हैं
वाजपेयी भी करते हैं
टाटा-बिड़ला भी करते हैं
और अंबानी भी करते हैं
तो फिर, आप फील गुड क्यों नहीं करते हैं

सब्सिडी को घटाते हैं
चारा-ताबूत पचाते हैं
घुटनों के बल अमरीका जाते हैं
जनता का गला दबाते हैं
हम फील गुड कैसे करते हैं

हम दो रोटी को तरसते हैं
घर बिन बरसात बरसते हैं
इधर क्रेडिट कार्ड बाँटते हैं
अनाज को महँगा करते हैं
हम फील गुड कैसे करते हैं

सड़कों पर बेकार टहलते हैं
अच्छी डिग्री पाते हैं
और बेरोजगार भटकते हैं
परेशान क्यों होते हैं
हम त्रिशूल दीक्षा देते हैं
आप फील गुड क्यों नहीं करते हैं

हर रोज भूखे मरते हैं
हम सरहद पर मरते हैं
हम हर दंगे में मरते हैं
हमारे ही घर उजड़ते हैं
हर दिन बिन बात के मरते हैं
हम फील गुड कैसे करते हैं

- नितिन, दिल्ली विश्वविद्यालय

अदालतों के भ्रष्टाचार पर क्यों बिसूरते हो चीफ जस्टिस साहब?

आखिर जज की कुर्सी पर देवदूत तो विराजते नहीं!

पिछले दिनों सुप्रीम कोर्ट के चीफ जस्टिस निचली अदालतों में फैले भ्रष्टाचार पर काफी दुखी हुए। अपना यह दुख उन्होंने पिछले दिनों एक चर्चित मामले की सुनवाई के दौरान प्रकट किया। मामला था अहमदाबाद की एक निचली अदालत द्वारा रिश्वत लेकर देश के राष्ट्रपति व मुख्य न्यायाधीश सहित कई प्रमुख हस्तियों के खिलाफ वारण्ट जारी करने का। सुनवाई के दौरान मुख्य न्यायाधीश महोदय की टिप्पणी में बेबसी भरा दुख छिपा था। लेकिन आखिर में उन्हें लगा कि न्याय के आसन पर बैठकर सिर्फ बेबसी जाहिर करना ठीक नहीं रहेगा। सो, उन्होंने न्यायपालिका को साफ-सुथरा बनाने के लिए ठोस कदम उठाने की नसीहत भी दे डाली।

अहमदाबाद की निचली अदालत की रिश्वतखोरी न्यायपालिका के भ्रष्टाचार की कोई पहली मिसाल नहीं है। जिन लोगों का निचली अदालतों से साबका हुआ है वे अपने अनुभवों से यह जानते हैं कि इन अदालतों में बैठे जजों की ठीक आँखों के सामने क्या-क्या होता है। पेशकार साहब घूस लेकर सम्मन तालीम नहीं होने देते। यह सब इतना आम है कि अब यह निचली अदालतों के कामकाज का एक जरूरी हिस्सा बन चुका है। इस पर किसी को कोई अचरज नहीं होता। निचली अदालतों में जजों द्वारा घूस लेकर अपराधियों के पक्ष में फैसले देने की घटनाएं भी अब इतनी आम हो चुकी हैं कि इस पर भी अब किसी आम आदमी को अचरज नहीं होता। अचरज इस पर होता है जब सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश महोदय इस पर हैरान होते हैं और दुख प्रकट करते हैं।

बात निचली अदालतों की ही क्यों करें? हाईकोर्ट ओर सुप्रीम कोर्ट के जज भी क्या इन्साफ के फरिश्ते हैं? शमित मुखर्जी का केस तो अखबारों में उछल गया। न जाने कितने ऐसे मामले ऊपरी अदालतों में अक्सर घटते रहते हैं जो लोगों के सामने नहीं आ पाते। क्या वाकई मुख्य न्यायाधीश महोदय अब तक यह मानते चले आ रहे थे कि अदालतें पाक-साफ बची हुई थीं। क्या राजनीतिक ढाँचे की चरम पतनशीलता के नित नये उजागर होते कारनामों के बीच न्यायपालिका कीचड़ में कमलवत खिली रहेगी? सचमुच हैरानी होती है, मुख्य न्यायाधीश महोदय के इस भोलेपन पर!

बहरहाल, हमारे मुख्य न्यायाधीश महोदय देश की न्यायपालिका के बारे में चाहे अभी तक भ्रमों के शिकार रहे हों, देश की आम जनता की आँखों पर से भ्रम का पर्दा पूरी तरह उठ चुका है। जिन्दगी ने राजनीतिक जनरल नॉलेज का यह सबक उसे अच्छी तरह सिखा दिया है कि पूँजीवादी न्यायपालिका अमीरों के पक्ष में न्याय का व्यापार करती है। आम जनता के मुकदमे बीसियों सालों तक अदालतों की फाइलों मे दम तोड़ते रहते हैं। अपनी गाड़ियों से सड़कों पर गरीबों को कुचलकर मार डालने वाले अमीरजादे छुट्टा घूमते रहते हैं। शातिर अपराधी संसद-विधानसभाओं की शोभा बढ़ाते हैं।

यह तो हुई आम जनता के जिन्दगी के अनुभवों की बात। क्या हर पढ़ा-लिखा आदमी इस सचाई से वाकिफ नहीं कि आज़ाद कहे जाने वाले हिन्दुस्तान में आज भी अंग्रेजी राज के समय से चली आ रही भारतीय दण्ड संहिता (आईपीसी) और अपराध प्रक्रिया संहिता (सीआरपीसी) चली आ रही है। जेल मैनुअल भी मामूली सुधारों के साथ अंग्रेजी जमाने का ही चला आ रहा है। हालत यह है कि एक गरीब आदमी की अदालत की नज़र में कोई साख ही नहीं है। वह किसी की जमानत तक नहीं ले सकता।

पूँजीवादी न्यायपालिका की इसी सचाई को जर्मनी के क्रान्तिकारी कवि और नाटककार बेर्टोल्ट ब्रेष्ट ने अपनी मशहूर कविता में इन शब्दों में लिखा है :

कानूनी किताबें उनकी
कारखाने हथियारों के
पादरी प्रोफेसर उनके
जज और जेलर तक उनके
सभी अफसर उनके
वो सब कुछ करने को तैयार।

ब्रेष्ट ने अपने एक बहुचर्चित नाटक 'एक रुका हुआ फैसला' में पूँजीवादी न्याय के ढकोसलों का और भी गहराई के साथ पर्दाफाश किया है। नाटक में वह दिखाते हैं कि किस तरह पूँजीवादी न्यायपालिका में कुर्सी पर बैठा जज अगर ईमानदार हो तो भी वह सामाजिक और वर्गीय पूर्वाग्रहों से मुक्त नहीं हो सकता। विधान शासक वर्ग बनाता है। फिर भला यह कैसे सोचा जा सकता है कि शासक वर्ग का ही एक सदस्य होने के नाते एक जज न्यायशील बना रहे।

दरअसल, सचाई तो यह है कि बुर्जुआ समाज में अपराध और न्याय एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं। छोटे-मोटे अपराध करने वाले या शोषण-उत्पीड़न के खिलाफ विद्रोह करने वालों को जेल की सींखचों में कैद कर दिया जाता है जबकि अपराधियों के सिरमौर सत्तासुख भोगते हैं और अपराध रोकने के लिए कानून बनाते हैं। ऐसे में क्या यह नहीं कहा जाना चाहिए कि बुर्जुआ न्याय अपने आप में ही एक अपराध है। जैसे कि बुर्जुआ समाज खुद मानवता विरोधी अपराधों पर टिका है। जिस मानवीय एजेण्ट यानी जज के जरिये कानून लागू किया जाता है वह भी इसी समाज का अंग होता है। फिर यह उम्मीद ही क्यों की जाये कि वे सचाई के पुतले बने रहेंगे। जज, नेता, कलक्टर या कोतवाल सभी इसी समाज के अंग हैं। सबका आपस में मिलना-जुलना होता है। कई जज रोटरी या लायंस क्लब जैसी संस्थाओं या फार्म हाउसों की पार्टियों में अक्सर ही आते-जाते हैं जहां सफेदपोश अपराधियों से उनका मेलजोल होता ही रहता है। अनेक जजों को शेयरों की खरीद-फरोख्त में लिप्त पाया जाता है। पूँजीवादी समाज में जहाँ सभी कुलीन-सम्भ्रान्त जन लक्ष्मी देवी की आराधना में जी-जान से जुटे हुए हैं तो भला जज महोदय क्यों पीछे रहें। आखिर वे कोई देवदूत तो हैं नहीं।

और फिर सिर्फ जजों के भ्रष्टाचार की ही बात क्यों की जाये? आज इस व्यवस्था के समूचे अंग-प्रत्यंग उघार हो रहे हैं, क्या विधायिका, क्या कार्यपालिका और क्या न्यायपालिका। जब किसी अंग के उघड़ने पर नंगापन सामने आ जाता है तो व्यवस्था के दूसरे अंग उस पर पर्दा डालने की कोशिश करते हैं। जब किसी अंग के भ्रष्टाचार पर ज्यादा चर्चा होने लगती है तो यह भ्रम पैदा होता है कि मामला दुरुस्त किया जा रहा है। लेकिन हमें इस सचाई को नहीं भूलना चाहिए कि पूँजीवादी सभ्यता और अपराध एक ही चीज के दो नाम हैं। जैसा कि फ्रांस के महान उपन्यासकार बाल्जाक ने भी कहा है कि हर सम्पत्ति-साम्राज्य की बुनियाद अपराध पर टिकी होती है। पूँजीवादी राजसत्ता और कुछ नहीं इस अपराधी समाज व्यवस्था की हिफाजत करने वाली दमन मशीनरी का ही दूसरा नाम है। नेता, नौकरशाह और न्यायाधीश इसी राज्यसत्ता के अमले-चाकर होते हैं।

एक अपराधी तंत्र के घटकों से (जज भी इसी तंत्र का एक घटक है) निजी जिन्दगी में सदाचारी होने की उम्मीद पालना ही बेमानी है। दरअसल जज की कुर्सी जिस ऊँचाई पर होती है वहां से इस व्यवस्था की असलियत इतनी साफ नज़र आती है कि न्याय करते समय अपने ईमान को बचा पाना उसके लिये मुश्किल होता है। अगर कोई जज घूस नहीं लेता तो या तो वह आदर्शवादी मूर्ख होगा या डरपोक। सामाजिक बदनामी के डर से कई न्यायाधीश चाहते हुए भी घूस नहीं ले पाते। क्या यह हम नहीं जानते?

वैसे, देश की न्यायपालिका में व्याप्त भ्रष्टाचार के इतने कारनामे अब उजागर हो चुके हैं कि अगर किसी व्यक्ति की न्यायापालिका में अब भी यह आस्था बची हुई है कि वह न्याय कर रही है तो या तो वह नासमझ है या मूर्ख।

- एम. रंजन

गरीबो! सुन लो! बच्चों को स्कूल भेजो। वर्ना सजा भुगतो!

मैं वाजपेयी सरकार का ढिंढोरची हूं। सुन लो! सुन लो! गौर से सुन लो! सरकार का नया फरमान आया है। अब सारे गरीब बच्चे स्कूल जायेंगे। सुन रहे हो गरीब भाई। जो बच्चा स्कूल नहीं जायेगा उसके मां-बाप को सजा दी जायेगी। पांच सौ रुपये जुर्माना होगा। गरीब भाई, सरकार ने यह योजना देश के सबसे गरीब बीस फीसदी बच्चों के लिये बनाई हे। बच्चों की उपस्थिति पर नजर रखी जायेगी। पंचायतें, नगर निगम या अन्य निकाय जहां जैसा हो, रखेंगे। गरीब भाई, तुम हमेशा अपनी दो जून की रोटी की चिन्ता में डूबे रहते हो। शिक्षा के बारे में सोचो। दुनिया इक्कीसवीं सदी में पहुंच चुकी है। तुम्हारे कारण दुनिया में सरकार की बदनामी हो रही है। दुनिया कह रही है कि भारत की आधी आबादी तो अशिक्षित है। लड़कियों की शिक्षा के मामले में तो भारत बांग्लादेश से भी पीछे है। कितनी खराब बात है। देश की छवि तुम्हारी वजह से बिगड़ रही है। अटल जी ऐसे में क्या मुंह लेकर विदेश जायेंगे? सोचो गरीब भाई सोचो। विदेशों से बड़े-बड़े साहब लोग भारत आ रहे हैं। पानी के जहाजों में नोट भरकर ले जा रहे हैं। अपने देश के साहब लोगों के पास इतना पैसा है कि सम्भालने में दिक्कत हो रही है। और गरीब भाई तुम वहीं के वहीं पड़े हो। कितना समृद्ध देश है हमारा। तुम भी इसे अपना ही समझो। पढ़ो, बच्चों को पढ़ाओ। ईमानदारी से जमकर मेहनत करो। फल की इच्छ मत करो। अगले जन्म के लिये कुछ अच्छे करम कर जाओ। कम से कम अपने बच्चों को ही पढ़ाओ।

गरीब भाई यह सवाल मत करो "कैसे पढ़ायें हुजूर"। सरकार ने कह दिया पढ़ाओ। यही क्या कम है। अब जुगत भिड़ाओ। स्कूल की बिल्डिंग नहीं है तो कोई बात नहीं। गरीब के बच्चे तो खुले आसमान के नीचे बैठ के पढ़ लेंगे। सरकारी मास्टर नहीं है तो क्या हुआ। नजर दौड़ाओ। जुगाड़ भिड़ाओ। लड़कों के लिये कहीं से हाईस्कूल पास पकड़ लाओ। लड़कियों के लिये आठ पास महिला शिक्षक भी चलेगी। अमीरों के बच्चों के लिये शिक्षक की जरूरत पड़ती है। तुम्हारे बच्चों के लिये तो पैरा टीचर यानि अर्द्ध शिक्षक भी चलेगा। स्कूल का मतलब बिल्डिंग और उसमें काम करने वाले शिक्षक ही नहीं होता गरीब भाई। समझो, स्कूल बहुत ऊंची चीज है। वैकल्पिक स्कूल भी रखा जा सकता है। गरीब भाई, सरकार तुम्हारे बच्चों की शिक्षा के लिये कितनी परेशान है, तुम्हें नहीं पता। उसकी परेशानी देखकर विश्व बैंक ने ढेर सारा पैसा दे दिया है। उसका पैसा धीरे-धीरे चुकाना है। इसके लिये तुम नहीं तो और कौन कोशिश करेगा। और मेहनत में जुट जाओ गरीब भाई।

गरीब भाई, अब सारी जिम्मेदारी तुम्हारी। किसी भी तरह अपने बच्चों को पढ़ाओ। सरकार की ओर मत देखो। सरकार के पास ढेर सारे काम हैं। तुम तो गरीब हो। तुम्हारे बच्चे जैसे-तैसे पढ़ ही जायेंगे, लेकिन अमीरों के बच्चों को ढेर सारा तामझाम करना पढ़ता है। आखिर कल को देश उन्हीं को चलाना है। फिर मध्यवर्ग के बच्चे भी हैं। मध्यवर्ग तो समझते ही हो। इन बाबू लोगों के लिये भी कुछ करना ही पड़ता है। तुमको एक बात के लिये अभी से सावधान कर दें गरीब भाई। तुम्हारे बीच जाकर कुछ लोग कहेंगे- "दोहरी शिक्षा पद्धति-तिहरी शिक्षा पद्धति मुर्दाबाद"। ये तुम्हें भड़कायेंगे और कहेंगे-"रोजगार और शिक्षा हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है।" इन असामाजिक तत्वों के बहकावे में आने की जरूरत नहीं है। जैसा सरकार कह रही है उसी राह पर आगे बढ़ो। बाधायें आयेंगी। उन्हें पार करो। भविष्य में कुछ स्वयंसेवक तुम्हारे ग्राम-नगर में भव्य मंदिर मनायेंगे-तुम्हारे सब दुःख दर्द दूर हो जायेंगे।

सारी बातें सुनने के बाद यह मत कहना कि हुजूर बच्चों को पढ़ायेंगे तो भूखों मर जायेंगे। यही बात तुम्हारी गलत है गरीब भाई। गरीबी का रोना लेकर बैठ जाते हो। तुम्हारी इसी बात से सरकार को सख्ती करनी पड़ी है। पांच सौ रुपये जुर्माना लगेगा, तो उसे चुकाने में तुम्हारी नानी याद आ जायेगी। सरकार बहुत समझदार है। बच्चों को पढ़ाने के लिये भूखा भी रहना पढ़े, तो कोई बात नहीं। घास-पात, आम की गुठली भी खानी पड़े तो कोई बात नहीं। मर भी गये तो सरकार दुनिया में सीना फुलाकर कहेगी कि ऐसा है हमारा देश, जहां का गरीब अपने बच्चों की शिक्षा के लिये शहीद हो गया।

- ढिंढोरची

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वानी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंगः कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
सम्पादकः **डा. दूधनाथ, मुकुल** • सम्पादकीय पताः **69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006** • सम्पादकीय उपकार्यालयः जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ